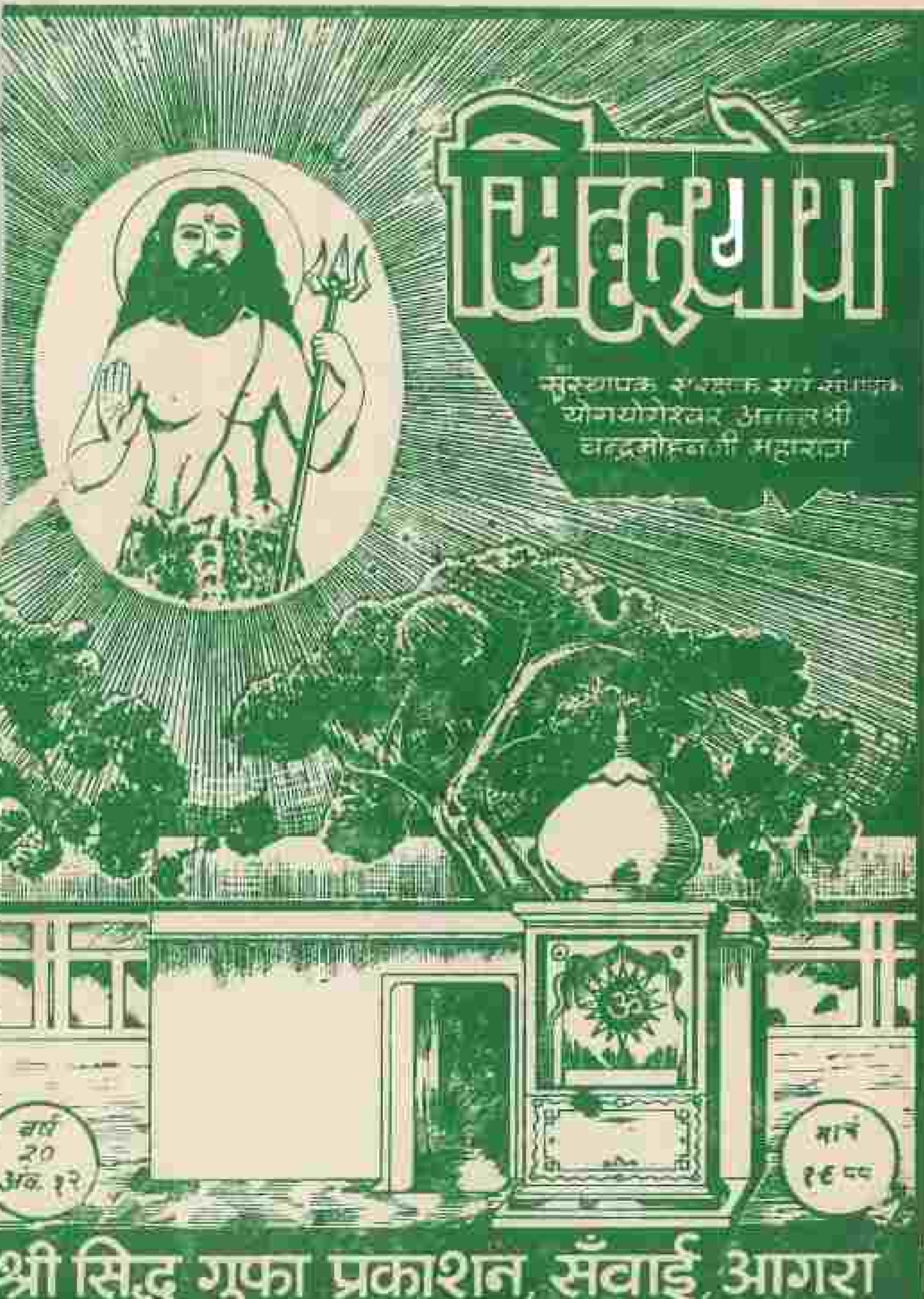

सिद्धयोग
संस्थापक, संरक्षक एवं संपादक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज
वर्ष २०
अंक १२
मार्च
१९८८
श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, सँवाई, आगरा

इस अंक में—

प्रकाशक
श्री सिद्धगुफा सवाई

संयुक्त सम्पादक
'दिव्य'

मार्च
१९८८

❀ सत्यम् उपैमि (प्रार्थना) १
❀ प्राणायाम से प्रकाशावरण क्षय (विशेष लेख) २
योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज
❀ अभ्यङ्ग के कतिपय गुण ८
❀ योगियों का सहज धर्म—मानवतावाद ९
श्री वेदप्रकाश अग्रवाल
❀ योग क्या है ? १३
डा० श्री शरणप्रसाद
❀ कर्म—एक विवेचन २०
श्री भगीरथ प्रसाद दीक्षित
❀ भूल जाओ भलाई करके २५
श्री विष्णुप्रसाद व्यास
❀ ईश्वर की उपासना क्यों और कैसे ? २९
श्री इन्द्रराज
❀ यम-नियमों की व्याख्या-भगवत्-पूजन का माहात्म्य ३६
वैद्य श्री रामधन शर्मा शास्त्री
❀ भारत का एक उपेक्षित तीर्थ ३९
श्री एस० एम० चौरासिया
❀ पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम् ४५
❀ दो कुण्डलियाँ (कविता) ४२
श्री हरिश्चन्द्र आचार्य 'मुमुक्षु'
❀ हठमार्गी योगियों को कुछ परामर्श ४७

वार्षिक मूल्य २० रुपया। इस अङ्क का ४ रुपया

श्री सद्गुरुदेव परब्रह्मणे नमः ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

महाप्रभु श्री रामलालजी की पावन जन्यती के
उपलक्ष में—

श्री सिद्धगुफा सवाँई पर

उत्तर भारत का प्रख्यात

योगा-महामेला

सभी गुरु भाई-बहिनों को यह जानकर परम हर्ष होगा कि
गत वर्षों की भाँति श्री सिद्धगुफा सवांई पर उत्तर भारत
का प्रख्यात योग-महामेला चैत्र शुक्ला सप्तमी,
अष्टमी, नवमीं, विक्रमी–सम्वत २०४५ तद-
नुसार गुरुवार, शुक्रवार, शनिवार
दिनांक २४, २५, २६ मार्च १९८८
को बड़ी धूमधाम से
मनाया जायगा।

श्री गुरुदेवजी की ओर से छपे हुए निमन्त्रण पत्र
भेजे ही जायेंगे, फिर भी यदि आपको निमन्त्रण-
पत्र न मिल पाए तो आप इसी सूचना
को निमन्त्रण पत्र समझ कर
सपरिवार इस पावन-समारोह
में सम्मिलित होकर
धर्म–लाभ लें।

☞ सभी आगन्तुक भाई-बहिन मौसम के अनुसार अपने-अपने बिस्तर साथ में अवश्य लाएं क्योंकि आश्रम की ओर से बिस्तर उपलब्ध कर पाना सम्भव न होगा।

निवेदक:—

स्वागत समिति, श्री सिद्धगुफा योगा-महामेला
योगा प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा
सवांई, आगरा (उ० प्र०)

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा।

वर्ष २० अङ्क १२	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्धं स्वभावम्, मर्त्यो मृत्योर्भुवं विरक्तो, मुक्तिं प्राप्नोति सद्यः। तस्मान्नित्यं सद्गुविमर्शं योगशास्त्रोपदेशात्, कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः'॥	मार्च १९८८

सत्यम् उपैमि

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि,
तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यम् उपैमि॥

—यजु० १।५

व्याख्या

[(अग्ने ...... चरिष्यामि)] हे सच्चिदानन्द स्वप्रकाश-रूप ईश्वराग्ने! ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि सत्यव्रतों का आचरण मैं करूँगा। [(तत् ...... राध्यताम्)] सो इस व्रत को आप कृपा (करें) के सम्यक् सिद्ध करें। [(इदं ...... उपैमि)] तथा मैं अनृत=अनित्य देहादि पदार्थों से [(पृथक् होके)] इस यथार्थ सत्य, जिसका कभी व्यभिचार विनाश नहीं होता, उस सत्याचरण विद्यादि लक्षण धर्म को प्राप्त होता हूँ। इस मेरी इच्छा को आप पूरी करें, जिससे सभ्य विद्वान्, सत्याचारी आपकी भक्तियुक्त धर्मात्मा होऊँ।

हमारा विशेष लेख—

प्राणायाम से प्रकाशावरण क्षय

योगी संसारसिंह

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

प्राणायाम के विधिवत् अभ्यास द्वारा जो किसी साधक द्वारा अपने सद्गुरु के निर्देशन में किया जाता है 'कितनी ऊँची स्थिति प्राप्त की जा सकती है' इसका उदाहरण है योगी संसारसिंह का चरित्र। जिसे श्री सद्गुरुदेवजी महाराज ने अपने इस लेख में समझाने का प्रयास किया है। आशा है 'सिद्धयोग' के पाठक भी इस साधक के चरित्र से शिक्षा लेकर अपनी योग स्थिति को उत्तम बनाने का प्रयास करेंगे।

—सं० सं०

योग दर्शन के साधन पाद-सूत्र सं० ५२ में भगवान् पतञ्जलिदेव का कथन है—"ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्"

सूत्र का आशय है कि प्राणायाम के अनुष्ठान से प्रकाश (विवेक ज्ञान) के ऊपर पड़ा आवरण क्षीण अर्थात् (क्षय) हो जाता है।

इस सूत्र को आधार बनाकर हमारे एक प्रिय शिष्य ने, जो बाद में योगी संसारसिंह के नाम से विख्यात हुआ किस प्रकार सिद्धि प्राप्त करली—इसका सविस्तार वर्णन हम अपने इस लेख में करना चाहते हैं ताकि योग-पथ पर आगे बढ़ने की तीव्र इच्छा रखने वाले हमारे अन्य बच्चे भी इस उदाहरण से शिक्षा ग्रहण करके सिद्धि के अधिकारी बन सकें।

संसारसिंह एक क्षत्रिय बालक था। इसका जन्म जम्मू प्रान्तान्तर्गत शहर कटरे के पास किसी गाँव में हुआ था। इसका अध्ययन काल कुछ कटरा में और कुछ उसके बाद जीन्द हरियाणा के पास जिला संगरूर में पढ़ता रहा। पठन काल में ही यह बच्चा हमारे पास आ गया था और इसने योग-दीक्षा ले ली थी। परन्तु योग-दीक्षा लेने के बाद भी इसके मन में तीव्रतम् इच्छा थी कि यह शास्त्रीय विधि के अनुसार यम-नियम आदि अष्टांग योग की अपनी साधना करता हुआ विधि-विधान पूर्वक हठयोगी बने। क्योंकि इसने हठयोग की महिमा अच्छे-अच्छे लेखकों की पुस्तकों में अधिक मात्रामें पढ़ी थीं, इससे प्रेरित होकर संसारसिंह पूरे विधि-विधान से हठयोग की साधना करना चाहता था। यह बच्चा हठयोग का अधिकारी भी था। आजकल के रसिकता के युग में इसका ब्रह्मचर्य आश्रम भी बहुत ही उत्तम रहा था। स्कूल और कालेज के अन्दर अध्ययन करते हुए भी रसिकता का कोई प्रभाव इसके मन पर नहीं पड़ पाया। इसका रहन-सहन बहुत ही सरल एवं सादा था।

इसने अपने अध्ययन काल में ही एक दिन सवाई आश्रम स्थित श्री सिद्धगुफा पहुंचकर अत्यन्त विनम्र भाव से हमसे प्रार्थना की कि 'हे गुरुदेव ! आप मुझे प्राणायाम की शिक्षा प्रदान कीजिए। मेरी बहुत ही प्रबल इच्छा है कि मैं प्राणायाम का अभ्यास करूँ और प्राणायाम का जो फल होता है उसे मैं अपनी साधना से प्राप्त कर लूँ।' अपने इस योग अधिकारी बच्चे की प्रार्थना को सुनकर मैंने उसे समझाया और कहा कि 'संसारसिंह तुम प्राणायाम के अधिकारी तो अवश्य हो किन्तु इसमें पैसे की तो अधिक आवश्यकता होगी। तुम्हारे लिए घी और दूध का प्रबन्ध कैसे हो पावेगा ? आश्रम में रह करके तुम केवल मात्र भोजन कर सकते हो। अतः विशेष व्यय की व्यवस्था तुम्हें सोच-समझकर स्वयं करनी होगी।' उस सुपात्र बालक ने तुरन्त कहा 'ठीक है गुरुदेव जी ! अबकीबार मैं रुपए की भी व्यवस्था करके आऊँगा।' इतना कहकर वह बच्चा तत्काल वापिस लौट गया और इधर-उधर की सिफारिशें कराके उसने सेना में नौकरी करली। जिसके फलस्वरूप दो या तीन वर्ष में ही लगभग सात आठ हजार रुपया भी उसने बचाकर जमाकर लिया। लगभग तीन या चार वर्ष के बाद वह पुनः एक घी का कनस्तर और लगभग आठ हजार रुपया साथ लेकर के हमारे पास आया और अपनी प्राणायाम करने की प्रबल इच्छा को पुनः प्रकट किया। उसकी तीव्र लगन को देखकर उसे हमने भगवान् शङ्कर के पञ्चाक्षरी मंत्र का विधि-विधान पूर्वक पाँच अनुष्ठान करने की आज्ञा दी। वह पाँच अनुष्ठान ऋषिकेश की जंगली झाड़ियों में रह करके गङ्गा किनारे सर्दी-गर्मी-वर्षा को सहन करते हुए पूरा करने में जुट गया। उन दिनों हमारा योग-प्रचार कार्यक्रम हरियाणा के जिला करनाल के अन्तर्गत सानवन गाँव में चल रहा था। संसारसिंह वहीं पहुंचा। हमने उस बच्चे की तीव्रतम इच्छा को समझकर दशाश्वमेधतीर्थ पर अवस्थित अपने आश्रम में त्रिबंध सहित प्राणायाम का उपदेश दिया। आयुष्मान् संसारसिंह ने हमारी शिक्षा व आज्ञा को पाकर के तत्काल प्राणायाम का प्रारम्भ कर दिया और यह अधिकारी बालक बाद में जम्मूकठरा अपने स्थान को वापिस चला गया। वहाँ रहकर इसने अपने एकान्त कमरे में बैठकर प्राणायाम करना आरम्भ किया। प्राणायामी योगी को जो आहार होना चाहिए वह सब उसको समझा दिया गया था। बतलाई हुई विधि के अनुसार वह अपने प्राणायाम के अभ्यास को नियमानुसार तत्परता से करता रहा। संसारसिंह रेचक पूरक सहित त्रिबंध लगा करके प्राणायाम के २० कुम्भक प्रातः काल करता और २० दोपहर को तथा २० सायंकाल किया करता था। पहले तो अभ्यासकाल में यह बच्चा अर्ध रात्रि में प्राणायाम का अभ्यास करता रहा। यह अभ्यास उसने लगभग तीन या साढ़े तीन वर्ष तक बराबर किया जिसके फलस्वरूप पहले

उसके शरीर में कम्पन होना शुरु हुआ। उसके बाद दादुरी द्रुति एवं धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ते-बढ़ते कुम्भक के बल से उसका आसन जमीन से ऊपर उठने लगा। इसके बाद धीरे-धीरे उसको प्रकाशावरण क्षय वाली स्थिति पैदा हो गई। योग-दर्शन बताता है 'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्' अर्थात्—योगी का प्राणायाम सिद्ध हो जाने के बाद प्रकाश के रास्ते का पर्दा नष्ट हो हो जाता है। उसके बाद उस योगी के अन्दर दूरदर्शन, दूरश्रवण, दूरस्पर्शन आदि की पूरी-पूरी योग्यताएँ आ जाती हैं। जो सिद्धियाँ देवताओं को सहज सुलभ हैं वे सब सिद्धियाँ योगी को भी प्राणायाम के बल से सहज मिल जाती हैं। इस ही प्राणायाम के बल से संसारसिंह के अन्दर इन सभी सिद्धियों का उदय हो गया। अब वह दूर-दर्शन-दूरश्रवण आदि सहज रूप से करने लगा था। संसारसिंह के जीवन की कई अद्भुत घटनाओं का वर्णन हम इस लेख में आगे कर रहे हैं जिससे सभी साधकों को यह ज्ञान हो जावे कि एक हठाभ्यासी योगी किस प्रकार विख्याति प्राप्त योगी बन जाया करता है।

एक विशेष घटना:—

ब्रह्मचारी संसारसिंह जम्मू प्रान्तान्तर्गत कटरा शहर के समीप एक विशेष चट्टान पर बैठा हुआ था। वह अपनी योगिक दृष्टि से दृष्टि घुमाकर सारे संसार को देख रहा था। संसारसिंह का ऐसा नियम ही था कि सभी ओर अपनी दृष्टि घुमाकर वह देखा ही करता था, कि कहाँ पर क्या हो रहा है। इसके बाद मन को पूर्ण वैतृष्ण्य करके अर्थात् मन में पूर्ण वैराग्य की स्थिति को लाकर समाधिस्थ हो जाया करता था। समाधि उसे अपने निज स्वरूप की स्थिति थी। एक रोज अकस्मात् एक घटना घटी। एक पुण्यात्मा जीव उसकी आँखों के सामने विश्राम में आया। वह अमृतसर का एक डाक्टर था। अचानक योगी संसारसिंह की दृष्टि उस पर पड़ी और अपनी योग दृष्टि से उसके (डाक्टर के) भुज्यमान संस्कारों को देखने लगा। ज्योंही योगी संसारसिंह ने उससे सम्बन्धित जीवात्माओं को देखा तो देखता है कि उसके दो लड़के परस्पर लड़ते हुए तीन मंजिल मकान से नीचे गिर गए किन्तु योगी संसारसिंह ने अपनी दृष्टि का अवलम्बन उनको देकर उनकी सुरक्षा कर दी। उनके शरीर में किसी भी प्रकार की चोट नहीं आने दी। उसके बाद प्रत्यक्ष में उस डाक्टर से कहा कि महाशय क्या तुम डाक्टर हो और जम्मू प्रान्त का भ्रमण करने अमृतसर शहर से यहाँ चलकर आए हो? उस डाक्टर ने उत्तर दिया कि हाँ महाराज! मैं अमृतसर से यहाँ भ्रमण करने आया हूँ। और मैं अमृतसर का ही रहने वाला एक डाक्टर ही हूँ। संसारसिंह ने कहा—भाई डाक्टर अभी-अभी हमारी दृष्टि तुम्हारे कुटुम्ब के ऊपर चली गई थी—तुम्हारे दो लड़के बहुत ही शरारती हैं, लड़ते झगड़ते

वह दोनों तीसरी मंजिल से नीचे गिर पड़े हैं लेकिन चिन्ता मत करो वह पूरी तरह सकुशल हैं उनको हमारी योग-दृष्टि का अवलम्बन मिल जाने के कारण किसी तरह की चोट नहीं आयी है। तुम्हारा छोटा भाई तुमको फोन करने के लिए चल पड़ा है जाकर उसका फोन सुनो। डाक्टर दौड़ा गया, उसको छोटे भाई का फोन मिला जिस पर उसने संसारसिंह के कथन की पुष्टि करते हुए फौरन अमृतसर बुलाया।

डाक्टर जब अपने घर पहुंचा तो दोनों बच्चों ने उसको बताया कि तीसरी मंजिल से गिरते ही किसी साधु ने उनका अपनी गोदी में लपक कर बचा लिया। डाक्टर फिर संसारसिंह के पास आया और बड़ी कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसको पांच हजार रुपए की भेंट देने का प्रयास किया, जिसे अस्वीकार करते हुए। संसारसिंह ने कहा कि जब मुझे प्राणायाम के लिए रुपयों की जरूरत थी तब मैंने फौज में नौकरी करके अपनी जरूरत पूरी की, अब मुझे कोई जरूरत ही नहीं तो इस भेंट को कैसे स्वीकार कर सकता हूं।

आश्चर्यजनक चमत्कार:—

संसारसिंह के गांव वालों ने बतलाया कि वह गांव छोड़कर एकान्तसेवी सिद्धयोगियों की तरह घर या गांव वाले कुछ भी बतलाएं बिना किसी पर्वतीय गुफा में रहने लगा। कई वर्ष तक उसका कोई पता न लगने के कारण घर और गांव के लोग यह समझ बैठे कि संसारसिंह किसी वनखण्ड में शरीर त्याग चुका है अन्यथा वह कहीं दिखलाई देता?

गांव वालों ने ही जम्मू के कर्ण नगर में श्री आर० एल० शर्मा चीफ इन्जीनियर की कोठी पर मुझे बताया कि उनके सूबे में एक अज्ञात मुसलमान फकीर घूमा करते थे जो प्रायः मौन रहते थे, लेकिन जब भी वह जो कुछ बोलते थे वह अक्षरशः सत्य प्रमाणित होता था। एक बार उक्त फकीर ने आकर गांव वालों को सावधान करते हुए बतलाया कि 'घनघोर वर्षा आने वाली है, इतनी जोर से ओले गिरेंगे कि जमीन घिर जायगी। चारों ओर बर्फ ही बर्फ दिखलाई देगी इसलिए तुम लोग गाय-भैंस, भेड़-बकरियों आदि पशुओं को सुरक्षित स्थानों पर ले जाओ।'

गांव वालों ने फकीर की बात मानते हुए अपने-अपने पशुओं और अपने लिए सुरक्षा के प्रबन्ध कर लिए लेकिन तब उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब ओले तथा कुछ भी नहीं आया और लगातार तेज धूप निकलती रही। गांव वालों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा क्योंकि आज तक उक्त फकीर की कोई बात या भविष्यवाणी कभी गलत साबित नहीं हुई थी। आश्चर्यचकित गांव वाले फकीर के पास पहुंचे और उससे कहा-कि आप तो कहते घनघोर ओले-वर्षा होगी लेकिन अभी तक चिलचिलाकर धूप निकल रही है, आपकी भविष्यवाणी तो कभी गलत साबित नहीं हुई। इस बार यह क्या हुआ?

फकीर साहब ने हंसते हुए गांव वालों से

पूछा कि अच्छा पहले यह भी बताओ कि तुम्हारे गाँव का राजपूतों का लड़का संसारसिंह कहाँ है? गाँव वालों ने बतलाया कि उसका तो ४-६ वर्ष से कोई पता नहीं, हमारे विचार से तो कहीं जंगल में उसने शरीर त्याग दिया है।

फकीर साहब फिर हँसे, हँसते हुए उन्होंने बतलाया— नहीं भाई ऐसी बात नहीं है। यह सारा गाँव उसी का है और यह सब खेल भी उसी का है। जाओ पहाड़ की उस मीलों लम्बी खोह को देखकर आओ जो ओलोंसे पटी हुई है। संसारसिंह ने ही अपने और पड़ोस के गाँवों को बचा लिया है और ओलों को पहाड़ की खोहमें भर दिया है। गाँव वालों ने देखा कि संसारसिंह उसी पहाड़ की ओर से दौड़ा चला आ रहा है। पास आने पर फकीर ने संसारसिंह से कहा—'कहो उस्ताद! तुमने अपने गाँव और गाँव के लोगों को बचा लिया और ओलों को पहाड़ की खोह में भर डाला!' फकीर की बात सुनकर संसारसिंह हँसा और बोला 'ऐसा ही होता है! हाँ ऐसा ही होता है!! ऐसा ही होता है!!!' कहकर भागकर अन्तर्ध्यान हो गया।

बन्दरों से मुक्ति:—

संसारसिंह के कालेज और छात्रावास के सहपाठियों ने मुझको बतलाया कि हम सुन चुके थे कि संसारसिंह ऊँचे दर्जे का पीर हो गया है, इसके बाद उसे छात्रावास के पास घूमते देखा तो उसके पास पहुँचे। उससे कहा कि भाई सुना है कि 'तुम ऊँचे दर्जे के पीर हो गए हो, छात्रावास में आकर बन्दर बहुत परेशान और नुकसान करते है, इनको तो रोक दो।' यह सुनकर संसारसिंह ने हँसते हुए कहा कि 'अच्छा भाई अब तुम्हारे छात्रावास में बन्दर कभी नहीं आयेंगे।' छात्रावास के छात्रों ने ही बताया कि तब से उनके छात्रावास में कभी बन्दर नहीं आये।

पिट लेने का इनाम:—

संसारसिंह के भाई पता लगाकर जम्मू आए तो पीर ने उनसे कहा कि 'तुम मेरे बच्चे संसारसिंह को ले आओ।' उन्होंने जवाब दिया कि 'महाराज! उसे हम कहाँ लाएँ? पहले तो उसका मिलना ही मुश्किल और अगर मिल भी गया तो वह बुरी तरह पिटाई करता है और ईंट पत्थर मारता है।' मैंने उनसे कहा कि 'भाई जाओ! तुम उसे ढूँढ़-ढाँढ़ कर कहीं से भी लाओ, मैं भी तो एक बार अपने बच्चे को देख लूँ'। उसे पकड़ कर अपने साथ मेरे पास ले आना। वह मेरे पास जरूर चला आएगा। दूसरे दिन वह संसारसिंह को लेकर मेरे पास आए। संसारसिंह आकर मेरी गोदी में बैठ गया। मैंने संसारसिंह से कहा कि अब तुम नवयुवक हो चुके हो। तुम्हारे शरीर का भार मैं नहीं उठा सकता, अब तुम नीचे बैठ जाओ। मेरे ऐसा कहने पर वह नीचे जमीन पर बैठ गया।

संसारसिंह के भाइयों ने मुझसे कहा कि 'यह पागल बना रहता है, ईंट पत्थर मारता रहता है, किसी प्रकार महाराजजी इसका

पागलपन दूर कर दीजिए।' यह कहकर जब वह चले गये तब संसारसिंह ने मुझको बतलाया कि गुरुजी! यदि मैं पागल न बनूं तो ये मुझको खा जाएँ, इसीलिए मैं इनके सामने पागल बना रहता हूं। दीवार की ओट में खड़े उसके भाई उसकी इन बातों को सुन रहे थे। उन्होंने झटपट सामने आकर कहा कि महाराजजी से तो तू ठीक-ठीक बातें कर रहा है फिर हमारे साथ ही यह ढोंग क्यों करता है? उन्होंने ही मुझे बतलाया कि बड़े आश्चर्य की बात है कि यह बड़े जोर से पत्थर मारता है जिससे दर्द तो होता है लेकिन किसी तरह की कोई चोट नहीं लगती और खून भी नहीं निकलता। यही नहीं जिस दिन यह हमारी पिटाई करता है उस दिन हमको दस-बीस या पचास हजार रुपए का तगड़ा लाभ जरूर होता है। मैंने उनसे हँसते हुए कहा कि इतना ज्यादा लाभ होता है तो तुम पिट लिया करो। उसके भाइयों ने कहा कि गुरुजी! आप ऐसी कृपा करो कि यह बिना मारे ही दे दिया करे। यह सुनकर संसारसिंह हँस पड़ा और हँसते हुए कहा कि 'बिना मार खाए कुछ नहीं मिलेगा—जाओ भाग जाओ!' यह बातें होते समय अधिक हो गया और हम अपनी कुटिया में जाकर सो गए।

कैंडी दफा लगी है ?

प्रातः श्री प्रभुजी की आरती-पूजन का समय हुआ। संसारसिंह के भाइयों ने मुझसे कहा कि संसारसिंह को भी बुला लीजिए। वह तो शराबियों की तरह नशे में पड़ा है। मैंने उनको समझाया कि वह इस समय ध्यान के नशे में है, उसको वैसा ही पड़े रहने दो। यहाँ बुलाएँगे तो उसकी वृत्तियों में भंग आएगा। सब आरती-पूजा उसकी समाधि में ही पूरी हो रही है। उसके भाइयों ने आग्रह नहीं छोड़ा तो हमने आवाज दी—'संसारसिंह! ऊपर आ जाओ। हम सब अब प्रभुजी की आरती कर रहे हैं।' उसने अपनी पंजाबी बोली में कहा—'गुरुजी तुहाडी आज्ञा हे तो मैं आजान्दा पर तुस्सी ये दस्सो कि दफा कैंडी लगी है?' मैंने उसको उत्तर दिया कि 'नहीं बच्चे तेरे पर कोई दफा नहीं लगी है। तू वहीं पर समाधिस्थ रह।' 'जो हो जो तुहाडी आज्ञा' कहकर संसारसिंह वहीं समाधि में पड़ा रहा।

इस तरह की एक नहीं अनेकों घटनाएँ संसारसिंह के बारे में सुनने-देखने को मिलीं जो सर्व-साधारण की शक्ति से परे थीं। अब सुनने में आया है कि संसारसिंह शरीर त्याग चुका है। पहले भी ऐसा कई बार सुनने में आया लेकिन वह कहीं पहाड़ में अदृश्य एवं अलोप रहा। अस्तु कुछ भी हो—यह तो नितान्त सत्य ही है कि संसारसिंह ने उच्चतम योग स्थिति को प्राप्त किया और अपने आपको सभी प्रकार से कृत-कृत्य बना लिया। शेष शुभ है।

अभ्यंग के कतिपय गुण

(चरक-संहिता से)

अभ्यङ्ग कहते हैं शरीर पर तैल मर्दन को। चरक-संहिता के अनुसार इस अभ्यङ्ग अभ्यास के कुछ गुण इस प्रकार हैं:—

जैसे तैल या चिकना पदार्थ लगाने से मिट्टी का बर्तन दृढ़ हो जाता है, जैसे रथ का पहिया चिकनाई लगाने से कार्य करने में समर्थ मजबूत और विपत्ति सहने में समर्थ हो जाता है उसी प्रकार तैल की मालिश करने से शरीर में दृढ़ता आती है चमड़ी सुन्दर हो जाती है वायु की पीड़ायें दूर हो जाती हैं शरीर क्लेश और अधिक श्रम करने में समर्थ हो जाता है। स्पर्श ज्ञान करने वाली इन्द्रिय में वायु का अंश अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा अधिक है और स्पर्शन् इन्द्रिय त्वचा में ही स्थित है, तैल की मालिश करना त्वचा को ही लाभ पहुंचाता है। इसलिए मनुष्य को तैल की मालिश करनी चाहिए।

नित्य तैल की मालिश करने वाले पुरुष का शरीर चोट लगने से उत्पन्न रोग की पीड़ा का अनुभव नहीं करता। अन्य कठोर काम करने में भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता बल्कि शरीर स्पर्श में सुखदायी दृढ़ सबल और देखने में सुन्दर रहता है नित्य तैल की मालिश करने से मनुष्य को बुढ़ापा भी कम सताता है अर्थात् बुढ़ापे के कारण उत्पन्न होने वाले विकारों में न्यूनता आती है।

पैरों के तलवों में तैल लगाने से खरखरा-पन, कड़ापन, सूखापन, रूखापन, थकान, पैरों का सो जाना, शीघ्र ही शान्त हो जाता है पैर सुकुमार होकर उनमें बल और दृढ़ता आ जाती है नेत्रों की दृष्टि स्वच्छ हो जाती है वायु शान्त हो जाता है, गृध्रसी आदि वात प्रकोप से उत्पन्न रोग होने की सम्भावना नहीं रहती। पैरों में फूटन (तीव्र पीड़ा) या बिमाई आदि नहीं होती। शिरायें और स्नायु कस जाते हैं अर्थात् नसें ढीली नहीं पड़ती।

सिर में तैल लगाने से सिर में दर्द नहीं होता, न गंज होता है न केश श्वेत होते हैं न बाल झड़ते हैं सिर की हड्डी के भागों का विशेष रूप से बल बढ़ता है केशों की जड़े दृढ़ हो जाती है वे काले हो जाते हैं इन्द्रियाँ प्रसन्न व सुखी रहती है त्वचा सुन्दर व निर्मल रहती है रात को सुख से नींद आती है ये सब सिर पर तैल लगाने के लाभ हैं।

कान में नित्य तैल डालने से वायु प्रकोप से उत्पन्न होने वाले कान के रोग गर्दन की नसों की और जबड़ों का अकड़ना ऊँचे सुनना बहरापन आदि रोग उत्पन्न नहीं होते।

योगियों का सहज-धर्म—

मानवता-वाद

❀ श्री वेदप्रकाश अग्रवाल

आज सम्पूर्ण विश्व नाना प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त, शोक-संतप्त एवं पीड़ित है। मनुष्यने वैज्ञानिक प्रगति कर पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, अग्नि पर अधिकार तो कर लिया तथा अपने हितार्थ विविध रूप से वह इनका उपयोग भी कर रहा है, किन्तु सृष्टि का सबसे बुद्धिमान, शक्तिशाली एवं उद्यम-शील प्राणी होने के बावजूद वह निरन्तर अशान्ति, चिन्ता, पीड़ा और पतन के गर्त में गिरता जा रहा है। मनुष्य-मनुष्य के बीच की खाई बढ़ती ही जा रही है, जिसका परिणाम विविध प्रकार के संघर्षों के रूप में सामने आ रहा है। सामाजिक विषमता इतनी अधिक है कि एक ओर अपार सम्पत्ति है तो दूसरी ओर सृष्टिका सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य ही दाने-दाने को मुहताज, भूखा, नंगा, बीमार, असहाय, दीन, हीन और उपेक्षित है। ऐसी घोर विषमता देखकर कवि-हृदय कराह उठता है-

एक ओर समृद्धि थिरकती,
पास सिसकती है कंगाली।
एक देह पर एक न चिथड़ा,
एक स्वर्ग के गहनों वाली॥
उधर खड़े हैं रम्य महल,
वे आसमान को छूने वाले।
और बगल में बनी झोंपड़ी,
जिनके छप्पर चूने वाले॥
श्वानों को मिलता दूध वस्त्र,
भूखे बालक अकुलाते हैं।
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर,
जाड़े की रात बिताते हैं॥
युवती के लज्जा वसन बेच,
जब ब्याज चुकाये जाते हैं।
मालिक तब तेल फुलेलों पर,
पानी-सा द्रव्य बहाते हैं॥

निर्धन, असहाय व्यक्ति ही दुःखी हो, सो बात नहीं। आज का अधिक-से-अधिक धनवान्, शिक्षित और सभ्य कहलाने वाला वर्ग भी नाना प्रकार की चिन्ताओं, समस्याओं से जकड़ा हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति अपनाही रोना रोता हुआ मिलेगा, चाहे कितना ही धनी-मानी हो। शायद ही कोई ऐसा घर होगा जहाँ पिता-पुत्र, भाई-भाई, माँ-बेटी, सास-बहू, ननद-भौजाई आदि के बीच टकराव न हो। प्रत्येक जाति, समाज, वर्ग, समुदाय के मध्य संघर्ष है, वह निरन्तर बढ़ रहा है। यही नहीं, वैज्ञानिक प्रगति की दौड़ में राष्ट्रों में घातक-से-घातक एवं अधिक-से-अधिक मात्रा में अस्त्र-शस्त्र निर्माण की होड़ लगी है। विश्व-युद्ध की सम्भावनाएँ बढ़ती ही जा रही हैं।

तब क्या इस धरती पर मनुष्य कभी सुख का अनुभव कर सकेगा ? शान्ति की साँस ले सकेगा ? क्या मनुष्य-मनुष्य के मध्य निरन्तर

चलती आ रही लड़ाई समाप्त हो सकेगी ? क्या आदमी-आदमी के रक्त का प्यासा न होकर परस्पर मित्रता एवं बन्धुत्व स्थापित कर सकेगा ? क्या घोर निर्धनता और अज्ञानान्धकार से पीड़ित मानवता का कभी उद्धार हो सकेगा ?

आइये, उक्त प्रश्नोंके उत्तर के लिए जरा परमात्मा-प्रदत्त दिव्य ज्ञान पर दृष्टिपात करें। परमेश्वर जो सर्व-शक्तिमान्, सर्व-व्यापक, सर्वज्ञाता है, जिसने सुन्दर सृष्टि की अद्भुत रचना की, उसके द्वारा प्रदत्त प्राचीनतम् ज्ञान 'वेद' के रूप में सम्पूर्ण विश्व को प्रारम्भ से ही आलोकित करता रहा है। सार्वभौम, सर्वोपयोगी एवं सर्वोत्कृष्ट महान् ज्ञान तथा शिक्षाओं से परिपूर्ण होनेके कारण ही 'वेद' आज तक इस संघर्षपूर्ण एवं घोर स्वार्थ के युग में विद्यमान है।

वेदों में सम्पूर्ण विश्व के लिए कल्याण की कामना की गई है—

योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्म-
स्तस्य त्वं प्राणेनाप्यायस्व।
आ वयं प्यासिषी महि गोभिरश्वै:
प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन॥

—अथर्ववेद ७/८१-५

'हे परमात्मन्! जो हमसे वैर-विरोध रखता है और जिससे हम शत्रुता रखते हैं तू उसे भी दीर्घायु प्रदान कर। वह भी फले-फूले हम भी समृद्धिशाली बनें। हम सब गाय, बैल, घोड़ी, पुत्र, पौत्र, पशु और धन-धान्य से भरपूर हों। सबका कल्याण हो और हमारा भी कल्याण हो।'

विश्व-कल्याण की जितनी उच्च एवं उदात्त भावना उपर्युक्त तथा अन्य वेद-मन्त्रों में है, उतनी संसारके साहित्यमें अन्यत्र न मिलेगी।

विश्व-प्रेम—मनुष्य-मनुष्य के बीच शत्रुता समाप्त होने एवं मित्रता, प्रेम स्थापित होने सम्बन्धी अमूल्य शिक्षायें वेद-मन्त्रों में भरी पड़ी हैं जो सम्पूर्ण विश्व की निधि है।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः॥

—अथर्ववेद ४/१३-१

'हे दिव्य गुणयुक्त विद्वान् पुरुषो! आप नीचे गिरे हुए लोगों को ऊपर उठाओ। हे विद्वानो! पतित व्यक्तियों को बार-बार उठाओ। हे देवो! अपराध और पाप करने वालों को भी ऊपर उठाओ (उद्धार करो)। हे उदार पुरुषो! जो पापाचरणरत हैं उन्हें बार-बार उद्बुद्ध करो, उनकी आत्म-ज्योति को जाग्रत करो।'

"मा अभिद्रुह:।" —अथर्ववेद १/५-४

'हे मानव! संसार के किसी भी प्राणी से द्रोह, ईर्ष्या और वैर मत करो।'

वेद का उपदेश है कि किसी जाति-विशेष या सम्प्रदाय-विशेष के लोगों से ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र से प्रेम करो। वेद की विश्व-प्रेम की भावना की पराकाष्ठा देखिये—

अद्या मुरीय यदि यातुधानो,
अस्मि यदिवायुस्ततप पुरुषस्य।

—अथर्ववेद ८/४-१५

'यदि मैं प्रजा को पीड़ा देने वाला होऊँ अथवा किसी मनुष्यके जीवन को संतप्त करूँ तो आज ही अभी इसी समय मर जाऊँ।

विश्वशान्ति—वेद का अनुयायी सर्वत्र शान्ति चाहता है। प्रभु से शान्ति की प्रार्थना करते हुए यह कहता है—

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ् शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म् शान्तिः सर्वँ् शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेध।

—यजु० ३६/१७

'द्युलोक—सूर्य अथवा महान् आकाश हमारे लिए शान्तिदायक हो। पृथ्वी और अन्तरिक्ष, जल तथा औषधियाँ एवं वनस्पतियाँ भी हमारे लिये शान्तिदायक हों। समस्त विद्वान् गण और तेजोमय पदार्थ, तेजोमय परमेश्वर और वेद-ज्ञान—ये सभी हमारे ऊपर शान्ति की वृष्टि करने वाले हों। संसार की सभी वस्तुएँ शान्तिदायक हों। समस्त संसार को शान्त करने वाली परम-शान्ति मुझे प्राप्त हो।'

परमात्मा से प्रार्थना के साथ-साथ शासक से भी शान्ति की प्रार्थना की गयी है—

शं नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते। शं राजन्नोषधीभ्यः।

—ऋग्वेद ९/११/३

'हे राजन्! तू हमारे गौ आदि पशुओं के लिये शान्तिदायक हो। मनुष्यों के लिए शान्ति सुधा की वर्षा करने वाला हो। हमारे घोड़ों के लिए भी शान्तिकारक हो। हमारी औषधि और वनस्पति आदि के लिये भी शान्तिदायक हो।'

चरित्र निर्माण—किसी कवि ने कहा है—

वह चाल चल कि उम्र खुशी से कटे तेरी।
वह काम कर कि याद तुझे सब किया करें॥

आइये देखें चरित्र-निर्माण के बारे में वेद का कथन है! कुछ उदाहरण प्रेक्षटव्य हैं—

मामुत्तरं कृधि (अथर्ववेद २/२७/७

'हे प्रभो! मुझे श्रेष्ठ बना दो।'

परिमाग्ने दुश्चरिताद् बाध-
स्वा मा सुचरिते भज।
उदायुषा स्वायुषोद-
स्थाममृताँ अनु॥

—यजु० ४/२८

'हे परमेश्वर! मुझे सब प्रकार के दुष्टाचार से हटाकर उत्तम चरित्र में स्थापित कीजिये। सदाचारी बनकर मैं जीवन्मुक्त अथवा दीर्घायु पुरुषों का अनुगामी होकर सुदीर्घायु और उत्तम जीवन से युक्त होकर उत्तम मार्ग में स्थिर रहूँ।'

वेद हमें ऐसा चरित्र बनाने का उपदेश देता है कि मित्रों की तो बात ही क्या शत्रु भी हमारी प्रशंसा करें—

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि॥

—ऋ० १/४/६

'हे दुर्गुणों और पापों को क्षीण करने वाले परमात्मन्! आपकी छत्रछाया में रहने वाले हम लोगों को आप ऐसा श्रेष्ठ और

महान् बना दे कि हमारे शत्रु भी हमें श्रेष्ठ और सौभाग्यशाली कहें।'

आत्मनिरीक्षण—प्रत्येक व्यक्ति जब तक आत्म-निरीक्षण न करेगा—उसे सही मार्ग पर चलने का ज्ञान न हो सकेगा। एकान्त में बैठकर अवश्य विचारना चाहिए, आज हमसे क्या त्रुटियाँ हुईं हमने किसी के लिये अशुभ कामना तो नहीं की। जहाँ कोई दोष हमें अपने अन्दर दिखायी दे वहाँ अवश्य सुधार का प्रयास करें एवं अपने हृदय, मन, इन्द्रियों को पवित्र तथा स्वच्छ बनावें।

किसी कवि ने कहा है—

कशा कशीये जिन्दगी से बचकर,
कभी तो खिलवत नशीं हुआ कर।
इसमें वो है कुदरत की बूँद,
पानी को गोहर आबदार कर दे ॥

आत्मनिरीक्षण करके शराबी और असत्य-वादी टालस्टाय, महात्मा टालस्टाय बन गये।

उदायुरुद् बलमुत् कृतमुत्, कृत्या मन्मनीषा मुदिन्द्रियम्।

—अथर्ववेद ५/६/८

'अपने जीवन को उत्तम और उत्कृष्ट बनाओ। बल को भी श्रेष्ठ बनाओ। कार्य भी उत्तम करो। कर्त्तव्य भी उत्कृष्ट बनाओ, बुद्धि को तीक्ष्ण करो।' उपर्युक्त पंक्तियों में आत्मनिरीक्षण की कैसी उदात्त प्रेरणा है।

वेद में अमूल्य उपदेश भरे पड़े हैं। पुरु-षार्थ पूर्वक वेदाध्ययन की आवश्यकता है। वेद की तुलना में संसार का कोई ग्रन्थ नहीं ठहर सकता। देश-विदेश के अनेक विद्वानों ने वेदों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। एक पाश्चात्य विद्वान् ने कहा है—'जो कुछ वेदों में मिलता है वह अन्यत्र नहीं मिलता।' प्रो० हीरेनने कहा है—'जिस प्रकार वेद देदीप्य-मान है, संसार का अन्य कोई ग्रन्थ वैसा नहीं चमकता, ज्ञान-प्रकाश नहीं देता। वेद मानव मात्र को अपना दिव्य प्रकाश प्रदान कर उसे आगे बढ़ने को प्रोत्साहित करते हैं। तो आइये, हम उसी के उपदिष्ट मार्ग पर चलें। इसीसे संसार में शान्ति होगी और विश्व का कल्याण होगा।

—卐—

—० आत्मानन्द ०—

आनन्द से आत्मा की आत्म प्रतीति अथवा आत्म साक्षात्कार की अनुभूति होती है। आत्मानन्द का प्रभाव बुद्धि को सुखमय स्वस्थ एवं संतृप्त कर देता है तथा समस्त व्यक्तित्व तृप्त हो जाता है। प्रारम्भ में लगभग बीस मिनट तक आँखें बन्द करके गहरे ध्यान में बैठे ही रहना चाहिए। अभ्यास होने पर भी लगभग ३०-४० मिनट तक ध्यान में बैठना पर्याप्त होता है। दिन में दो बार इसका अभ्यास करना चाहिए।

ध्यान के पश्चात् भौं को हलके से मलते हुए धीरे-धीरे आँखें खोलकर दो-तीन मिनट तक शान्त होकर बैठे ही रहना चाहिए। कभी-कभी सामूहिक ध्यान में बैठना भी ध्याना-भ्यास में सहायक होता है। ध्यान का उद्देश्य प्रभु से सम्बन्ध जोड़ना और दिव्यानुभूति का अनुभव करना है।

—शिवानन्द

योग क्या है ?

डा० श्री शरणप्रसाद

संतुलित जीवन ही योग है अर्थात् अशांत मन में असंतुलन एवं शान्तचित्त में सन्तुलन स्वाभाविक होता है। यह सभी का अनुभव होगा कि मन जब विचार करना प्रारम्भ करता है तभी मन गति उत्पन्न करता है। गति उत्पन्न करने के लिए संकल्प या विचार का होना नितान्त आवश्यक है और हम यह अनुभव करते हैं कि हम चाहें या न चाहें चित्त में विचारों के तरंग उठते रहते हैं। इन विचार-तरंगों को जब हम रोकना चाहते हैं तब उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप विचार आनेकी गति में और भी अधिक वृद्धि होती है। इसलिए विचारों के प्रवाह को रोकने का प्रयास बिल्कुल न किया जाय, यह सबसे पहला काम है और तब मन में कौन-कौनसे नये विचार आ रहे हैं और जा रहे हैं उनको केवल देखना मात्र है। जैसे एक आदमी अपने मकान की खिड़की में बैठकर सड़क पर आते-जाते हुए आदमियों को केवल चुपचाप बैठे-बैठे देखता है, लेकिन एक परिचित आदमी या मित्र दिखलाई देता है तो उसको बुलाकर उससे बातचीत करने लगता है और जब कोई दुष्ट या कुटिल आदमी देखता है तो उसके मन में घृणा का भाव उत्पन्न होता है। लेकिन मन के विचारों की ओर नजर रखते समय न हमें किसी विचार को दोस्त के रूप में बुलाना है और न किसी गलत विचार को तिरस्कृत के रूप में देखना है। अच्छा विचार आने पर न हमें प्रसन्नता होनी चाहिए कि देखो मेरे अंदर कितने अच्छे विचार आ रहे हैं, इसलिए मैं कितना अच्छा हूँ और गलत या बुरा विचार आने पर हमें ऐसा नहीं मानना चाहिए कि देखो, मैं कितना बुरा आदमी हूँ, क्योंकि मेरे मन में बहुत खराब या गलत विचार आ रहे हैं। सारांश मेरे विचार अच्छे हों तो मैं अच्छा हो गया ऐसा मानकर हम उत्साहित न हों और विचार बुरे हों तो मैं बुरा हो गया ऐसा मानकर निराश नहीं होना चाहिए। विचारों से हमें अपनत्व का रिश्ता न जोड़ते हुए केवल देखते रहने की अर्थात् दर्शक की भूमिका साधनी है।

विचार मेरे नहीं हैं, क्योंकि विचार मन में उठ रहे हैं, मन मेरा नहीं है मन तो ईश्वर का दिया हुआ एक विशेष उपयोगी अङ्ग है, जैसे हम हाथ-पैर और बुद्धिका उपयोग करते हैं, ठीक वैसे ही हमें मनका उपयोग करना है।

हाँ, मन में आये हुए विचारों के द्वारा हम कौनसी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। मन में कौनसे विचार उठते हैं, इस बारे में सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए। यह निश्चित रूप से मानना चाहिए कि जिन विचारों को हमने अन्दर आने दिया है अपनी इच्छा से वे ही विचार बाहर आयेंगे और हमने उन्हीं विचारों को मन के अन्दर आने दिया है जो हमें अच्छे लगते हैं, प्रिय लगते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि वे विचार अच्छे या ऊँचे होने चाहिए। जैसे हम अपने आहार में स्वादिष्ट वस्तुओं को अधिक ग्रहण करते हैं, उस समय शरीर-पोषण का ध्यान

कम रहता है, लेकिन स्वाद का विशेष ध्यान रखा जाता है। हमारे प्रचलित पाकशास्त्र कला का यही आधार है। जिस प्रकार हमने अपने स्थूल-शारीरिक आहार में स्वाद को सबसे अधिक महत्व दिया है, उसी प्रकार हम अपने मानसिक आहार में अपनी रुचि को सबसे अधिक महत्व देते हैं। सचमुच देखा जाय तो विचार ही हमारा मानसिक आहार है।

स्थूल शारीरिक आहार तो हम दिन-भर में अधिक से अधिक नाश्ता और भोजन के रूप में केवल ३-४ बार लेते हैं, लेकिन विचार (अच्छा या बुरा) जो हमारा मानसिक आहार है उसको हम अपनी सब ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा निरन्तर ग्रहण कर रहे हैं। जाग्रत एवं निद्रा दोनों अवस्थाओं में यह विचार ग्रहण करने की प्रक्रिया चालू रहती है। जाग्रत अवस्था में ग्रहण किये हुए विचार स्वप्नावस्था में सामने आते हैं और वे मानो व्यक्ति की तरह कहते हों कि हमारी इच्छा पूरी करो। यह सब अच्छी तरह जानते हैं कि जिन विचारों को हम जाग्रत अवस्था में क्रिया के रूप में तृप्त नहीं कर पाते उनको हमें अपने काल्पनिक स्वप्नकी दुनियामें तृप्त करना पड़ता है।

देखो भाई, जो भी विचार हमने अपने भीतर आने दिया है, जान-बूझकर या अनजाने या गफलत में उनको तृप्त करने की जवाबदारी सारी हमारे ऊपर आती है। हमारे विचार निपट हमारे हैं, दूसरे के नहीं। इसलिए इन बेचारे विचाररूपी मेहमानों को जिनको हमने परोक्ष या अपरोक्ष रूपमें आमंत्रित किया है, उनका योग्य प्रकार से आदर-सत्कार करना हमारा धर्म हो जाता है। आमंत्रित विचाररूपी मेहमानों की आवश्यक सेवा करना हमारा स्वभाव है। जिन विचारों को हम अपने मन-मन्दिर में प्रतिष्ठित करते हैं, उनकी सेवा का पूरा ध्यान हमें रखना होगा।

मन के भीतर घुसे हुए विचार हमारी आज्ञा के अनुसार ही प्रवेश पाते हैं। हमारे मन के भीतर कौन आता है? जिनको हम ऊपर-ऊपर से नहीं, लेकिन मन की गहराई में जहाँ शायद हमारी नजर नहीं पहुँच पाती या कठिनाई से पहुँचती है वैसी जगह पर वे आश्रय लेते हैं। जो विचार हमारी दृष्टि में अक्सर बुरे होते हैं, जिनको हम निम्नकोटि के मानते हैं, वे विचार भी हमारी इच्छा या प्रियता के कारण, हमारी आज्ञा से ही हमारे मन में प्रवेश करते हैं, उन विचारों को बुरा मानते हुए भी उनके प्रति हमारा आकर्षण होता है, यह मत भूलिये और फिर वे हमारे मन में किसी प्रकार आहट किये बिना चुपचाप ऐसी जगह बैठ जाते हैं, जहाँ हमारे मन में अँधेरी जगह होती है और हमारे विवेक तथा जागृति का प्रकाश सहज में पहुँच नहीं पाता।

मान लीजिये हमें तेज बुखार है, शरीर अस्वस्थ अर्थात् अशांत है, चिकित्सकने हमारे हित की दृष्टि से मना कर रखा है कि आज ज्वर है, तो कुछ खाना नहीं है। बहुत सम-

चोरी जैसी लगे और रहा न जाय तो साग-भाजी का पतला सूप या थोड़ा फल-रस लेने से काम चलेगा। वैद्यकी सलाह को हम ठीक या उचित मानते हैं, लेकिन उत्सव या किसी अन्य निमित्त से जब कोई मिष्ठान्न, रसगुल्ला, पेड़ा या गुलाबजामुन सामने दिखाई देता है, तो फिर हम सोच में पड़ जाते हैं। उधर वैद्य की सलाह हमें मान्य है, मुँह का स्वाद थोड़ा कड़ुवा भी है, लेकिन हम सोचते हैं कि शायद मुँह का जायका सुधर जायगा। इस बहाने मन को समझा-बुझाकर, भुलावे में डालकर एकाध रसगुल्ला मुँह में डाल देते हैं। खाते समय थोड़ा अच्छा भी लगता है और सोचते हैं कि रसगुल्ला तो हल्का ही है, क्या हर्ज है? लेकिन शरीर को हर्जा हो जाता है और दो घण्टे के बाद बुखार चढ़ने लगता है। तब सोचते हैं कि वैद्य ने ठीक ही कहा था हमने उनकी बात मानी नहीं, उसका यह परिणाम है। इस प्रकार हम अपने जीवन में सही बात के लिए उल्टा-सीधा प्रयोग करके जब वह हमारे अपने अनुभव में खरा उतरता है तभी हम अपने जीवन में उन विचारों को अपना बनाकर अपनाते हैं। स्वानुभव के बिना विचार को अपनानेमें बड़ी असुविधा तथा कठिनाई होती है। हम सुनते हैं कि अमुक आदमी अच्छा है, लेकिन जब तक हम उस व्यक्ति से सम्बन्ध नहीं जोड़ लेते और अच्छाई का अनुभव नहीं होता तब तक उस व्यक्ति से हमारी दोस्ती नहीं हो पाती, चाहे हम ऊपर-ऊपर से कितना भी चाहें।

मतलब यह कि हम ऊपर से कुछ चाहते हैं, तो भीतर-भीतर ठीक उसके विपरीत चाह पड़ी रहती है। अक्सर हम मन की ऊपरी चाह से चलते हैं तो हमारी भीतरी चाह हमें चैन से बैठने नहीं देती, क्योंकि भीतरी या गहरी चाह भले ही तुरन्त सामने न आती हो या दिखाई न पड़ती हो तो भी उसकी जड़ बड़ी गहरी एवं मजबूत होने की वजह से हमें भीतरी एवं गहरी चाह मजबूर करती है, जबरदस्ती करती है और तब हम पहले कदम के ठीक विपरीत दूसरा कदम उठाते हैं। इस प्रकार हम अपने जीवन-पथ में दो कदम आगे तो पाँच-दस कदम पीछे चलते हैं। इस प्रकार जिन्दगी में हम कभी आगे तो कभी पीछे की ओर चलते हैं। चलते हैं जीवन-भर बड़ी तेज रफ्तार से, क्योंकि आजकल हर बात में स्पीड का जमाना है और जीवन के उत्तरार्द्ध में या वृद्धावस्था में जब हिसाब-किताब करते हैं तो पाते हैं कि जीवन-पथ पर हम बड़ी तेज गति से चले इतनी तेज गति से कि कभी-कभी अकस्मात् दुर्घटना (accident) भी हो गई, चोटें भी खायीं, कभी चोट खाकर सँभलने की कोशिश भी की, लेकिन हमारे अत्यन्त गहरी, भीतरी, लुभावनी चाहों ने हमें विपरीत दिशामें चलने के लिए फिर मजबूर कर दिया।

जिन्दगी-भर हमने दोनों प्रकार के विपरीत विचारों से समझौता करने की पूरी कोशिश की और इसी कोशिश में जिन्दगी समाप्त प्रायः हो गई। उत्साह एवं सामर्थ्य

भी कुछ बचा नहीं, शरीर भी दुर्बल एवं निकम्मा हो गया, तब कहीं ख्याल में आया कि अरे भाई ! जिन्दगी में खूब तेज चलते-चलते हम थककर चूर हो गये, लेकिन हमारी दिशा गलत थी।

हम जीवन में गति के इतने प्रेमी हैं कि शांत चित्त होकर, सोचने-विचारने की फुर्सत नहीं मिलती। समय का अत्यन्त अभाव होता है, सोचते हैं गति तो है कहीं न कहीं पहुंच ही जायेंगे। हमारी दृष्टि केवल गति पर होती है। तब मन ऊपर-ऊपर से जल्दी-जल्दी निर्णय करता है और उसके पीछे-पीछे उसका आज्ञाकारी शरीर चलता है।

हमारे मन की ऊपरी सतह और भीतरी सतह में जब परस्पर विपरीत विचार होंगे, तब हम तीव्र आन्तरिक संघर्ष से बच नहीं सकते और इसमें जीत उसकी होगी जिसकी ताकत अधिक होगी और हमारे जीवनकाल में अक्सर जीत गलत विचारों की होती रहती है।

इसको हम एक उदाहरण के द्वारा समझाने की कोशिश करेंगे। जब हमारे मनरूपी घरमें हमने ज्ञात या अनजान में अपरिचित अनेक व्यक्तियों को, आइये, आइये, आप भी आइये, तुम भी आओ, बाहर क्यों खड़े हो, सभी प्रकार के विचारों को बिना जान-पहचान के जो भी आया उनको प्रवेश देते चले गये, तो कभी-कभी आपस में मारपीट हो जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, झगड़ा न होने में ही आश्चर्य है।

जैसे आपने अनेक आफिस, होटल, घर या जो विद्यार्थी अच्छी तरह पढ़ाई करते हैं, उनके कमरे के बाहर एक छोटी तख्ती (बोर्ड) टँगी हुई देखी होगी। अनुमति बिना प्रवेश निषेध (No admission without permission) उस कमरे की तख्ती को देखकर अधिकांश विद्यार्थी कमरे के दरवाजे के पास आकर भी वापस लौट आते हैं। सोचते हैं कि बेचारा पढ़ाई करता होगा, उसके पास फालतू समय नहीं होगा। अगर कोई प्रवेश करता है तो अपना काम निपटाकर वह तुरंत कमरे के बाहर निकल आता है और पढ़ाई से जी चुराने वाले, तूफानी विद्यार्थी (बिना अनुमति प्रवेश निषेध और आयें तो काम पूरा करके तुरन्त कमरे के बाहर चले जायें) ऐसी तख्ती को देखकर सोचते होंगे कि उसके कमरे में तो एकांत ही होगा। ऐसे विद्यार्थीका परीक्षा में उत्तीर्ण होना प्रायः निश्चित है। लेकिन जिस विद्यार्थी के कमरे के बाहर कोई तख्ती (Board) ही नहीं है, बल्कि वह किसी प्रकार की तख्ती को लगाना अपनी शान के खिलाफ समझता है तो उस कमरे में निकम्मे, उत्पाती विद्यार्थी बिना बुलाये किवाड़ को धक्का मारकर या कभी-कभी किवाड़ तोड़ कर भी अगर कमरे के भीतर घुस-पैठ करते हैं, केवल गपशप करनेके लिए, क्योंकि उनको कालेज-जीवन में पढ़ाई से कोई मतलब नहीं है। सिनेमा, फिल्म, अभिनेता, अभिनेत्री या राजनैतिक नेताओं की चर्चा होती है और कोई अगर बाहरी आदमी नहीं मिला तो

अपने प्रिंसीपल साहब एवं अध्यापक तो हैं ही और दूसरा कोई नहीं मिला तो अपने ही कमरे या क्लास के विद्यार्थी की चर्चा होती है और चर्चा जब किसी अभिनेत्री या लड़की के बारे में चलती है तो समय का पता नहीं चलता। ऐसे विद्यार्थियोंकी क्या दुर्दशा होती है इसका अनुमान सभी लोग कर सकते हैं। ऐसे विद्यार्थी के कमरे में अक्सर लड़ाई-झगड़े बहस, खींचातानी के अलावा और कोई दृश्य नजर नहीं आता। ऐसे विद्यार्थी अगर चोरी आदि करके परीक्षा में शायद पास भी हो जाते हैं। ऐसे ही एक विद्यार्थी का स्मरण आ रहा है, जो कालेजमें नेता बनकर हड़ताल करवाता, क्लास में दूसरे विद्यार्थियों के द्वारा गलत हाजिरी भरवाकर बाहर की हवा खाते रहते या सिनेमागृह में ब्लैक की टिकट लेकर आता, हमेशा बहस या लड़ाई-झगड़े में उलझे रहता, पढ़ाई करने से उसके सिर में दर्द शुरू हो जाता; क्योंकि पढ़ाई कम करना या बिल्कुल न करना और परीक्षा के समय पेपर की चोरी करके या नकल मारकर इससे भी काम न चला तो परीक्षा के बाद शिक्षकों को डरा-धमका कर अपने परीक्षा-पत्र के नम्बर बढ़वाकर परीक्षामें उत्तीर्ण होता, यही उसके विद्यार्थी-जीवन का क्रम था। इसलिये उसने कभी पढ़ने की परवाह नहीं की, क्योंकि परीक्षा पास करने के लिए उसके पास अनेक अमोघ साधन थे।

आखिर उसने आयुर्वेदिक कालेज के तीन वर्ष बड़े मजे में निकाले, अधिक मेहनत करने वाले और कभी-कभी होशियार विद्यार्थी शायद परीक्षा में फेल हो जावें, लेकिन हमारे इस अद्भुत विद्यार्थी का पास होना निश्चित था।

यह बेजोड़ विद्यार्थी अच्छे नम्बरोंसे परीक्षा में उत्तीर्ण होकर आयुर्वेदिक डिग्री लेकर आया। उसके पिताजी की अच्छी पहुंच थी, इसलिए उसको अच्छी नौकरी मिल गई। इत्तफाक से उन्हीं दिनों मैं उस विद्यार्थी के पिता के पास मेहमान के तौर गया हुआ था, उसके पिताजी बड़े खुश थे। उन्होंने कहा कि देखिए भाई साहब, अब हमारे सिर का भार लगभग उतर गया, क्योंकि लड़का पढ़-लिख गया और उसको अच्छी नौकरी भी मिल गई है, शादी-ब्याह तो पहले ही हो चुका है।

मैं दोपहर के भोजन के उपरान्त विश्राम करके अखबार पढ़ रहा था, इतने में वह लड़का मेरे पास चुपचाप एकांतमें आया और अपने मन की व्यथा सुनाई, देखिये डाक्टर साहब मैं अच्छे नम्बरों से पास होकर प्रमाणित वैद्य तो हो गया, अच्छी नौकरी भी मिल गई, काफी अच्छा वेतन भी मिल जाता है, लेकिन मैंने कालेज-जीवन में कभी पढ़ाई नहीं की। इसलिए किस रोग में कौनसी दवा दी जाय, औषधियों का मिश्रण किस प्रकार तैयार किया जाता है, रोगी का परीक्षण तथा चिकित्सा कैसे करना, यह सब मैंने कालेज-जीवन में कभी कुछ सीखा नहीं, पढ़ा नहीं, इसलिये मुझसे चिकित्सक का काम ठीक से नहीं हो पाता, चिकित्सालय के बाह्य

एवं अंतःरोगी मेरी इस कमजोरी को पहचान गये हैं। मेरे अधिकारी को भी मेरी कमजोरियों का पता चल गया है। अब तो नौकरी जाने तथा भूखे मरने की नौबत आ गई है। इस विषयमें अपने पिताजी से बातचीत करने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी; क्योंकि उसने अपने पिताजी को अपने कालेज-जीवन के बारे में पूरा अछूता रखा था। मैंने उसको सलाह दी कि सब लोग परीक्षा पास करने के पहले पढ़ाई करते हैं, लेकिन तुमको कम से कम परीक्षा में उत्तीर्ण होनेके बाद पढ़ाई पूरी करनी होगी अन्यथा तुम्हारी कमजोरी ही तुमको खोखला बना देगी। इसके बिना तुम्हारी समस्या का हल होना मुश्किल है।

अधिकांश व्यक्तियों का जीवन उपरोक्त विद्यार्थी के जीवन-क्रम से काफी हद तक मिलता-जुलता है। हम लोगों ने भी उल्टे-सीधे रास्ते पैसे कमाकर अच्छे मकान, सुन्दर कपड़े, परिवार की सुरक्षा आदि कर ली, लेकिन हमारी व्यक्तिगत आन्तरिक अवस्था बेचारे उपरोक्त विद्यार्थी की तरह है। जो दूसरों की नजरमें परीक्षामें उत्तीर्ण है, सर्टीफिकेट है, नौकरी है, पैसा-प्रतिष्ठा सब कुछ है लेकिन जीवन के संध्याकाल में जब वह रुककर खड़ा होकर सोचता है तो उसको ऐसा महसूस होता है कि वह जीवन से हार कर थक गया है। क्या करना और क्या नहीं करना, समझमें नहीं आता और काफी प्रयास के बाद अगर समझ में आता है तो उसको जीवन में उतारने की शक्ति नहीं है। दूसरों की नजर में वह बड़ा आदमी है, समाज में मान-प्रतिष्ठा है, घर के लोग भी उसका आदर करते है, लेकिन वह अपने आपको असहाय एवं दुःखी पाता है, सोचता है जीवन में कुछ कर नहीं पाया।

हमें अपने मन की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए अपने ही मनको ठीक तरह समझाना होगा। हमारे मनके द्वार के बाहर एक छोटी तख्ती लगाना होगा—'अनुमति बिना प्रवेश निषेध।' केवल दिखलाने के लिए तख्ती लगाने से काम नहीं चलेगा। बल्कि मन के द्वार पर उपर्युक्त तख्ती लगाने के बावजूद आपको वहाँ कड़ा पहरा देना होगा ताकि आपकी इजाजत के बिना कोई विचार अन्दर न आने पावे, क्योंकि प्रत्येक विचार एक-एक व्यक्तिके समान नहीं, उससे भी बढ़कर शक्तिशाली होते हैं। विचार जितने सूक्ष्म होंगे तथा गहराई में होंगे, वे उतने ही बलवान् होते हैं। मन के भीतर सही विचार होंगे तो सही शक्ति बढ़ेगी और मन में गलत विचारों का जोर रहा तो मानसिक शक्ति की दिशा गलत होगी। इतना समझ लेना आवश्यक है कि एक बार आपने जिस विचार को प्रवेश दिया वह अपना काम करता रहेगा, उसमें आपका बश नहीं चलेगा। विचारों को केवल प्रवेश देना न देना आपके हाथ में है। लेकिन आपके मन में किसी विचार को प्रवेश मिल गया तो जैसे एक बहुत छोटे बट-वृक्ष के बीज से अत्यन्त विशाल एवं मजबूत बट-वृक्ष तैयार होता है, ठीक उसी प्रकार हमारे विचारों की

हालत है। जितने समय तक वे हमारे मन-रूपी जमीन के भीतर पड़े रहेंगे, वे उतने गहरे जायेंगे, मजबूत और विशाल बनेंगे तब उनको निकालने में काफी कठिनाई होती है, लेकिन अशक्य नहीं है।

जब तक हम अपनी इच्छाओं को और बहुत गहरे में छिपी हुई चाहों को खोल-खोलकर बाहर निकालकर उनसे परिचय प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक हमारे भीतर जिस तरह के विचार पड़े हैं, चाहे अच्छे हों या बुरे, वे अपने सजातीय विचारों को जबर-दस्ती खींचकर अन्दर बुलायेंगे, उनको आश्रय देंगे, सेवा करेंगे और पाल-पोषकर बड़ा करेंगे।

बीज को अपने विकास के लिए जैसे जमीन की तह में छिपना पड़ता है ठीक उसी प्रकार विचारों को अपना पोषण ग्रहण करनेके लिए विकसित होनेके लिए मनकी तहोंमें छिपाना पड़ता है। जिस तरह हम अपनी प्रिय वस्तु को अत्यन्त सुरक्षित स्थान पर छिपाकर रखते है ताकि उसको कोई देख न पाये ठीक यही बात हमारे मानसिक विचारों के लिए लागू होती है।

जमीन के भीतर कितनी गहराई में आपने बीज डाल रखा है, सुरक्षित रूप से विकसित होने के लिए और उस बीज को अगर आप मेहनत से खोदकर जमीन के बाहर हवा में निकाल लेते है तो बीज की विकासशील जीवनी-शक्ति अर्थात् बीज का बीजत्व ही नष्ट हो जाता है। ठीक उसी प्रकार जब आप गहराई में दबे हुए विचारों को ध्यान द्वारा बाहर प्रकाश में निकालकर परिचय प्राप्त करनेकी कोशिश करेंगे तो उन विचारों की शक्ति मारी जाती है।

ठीक बीज की तरह विचारों के प्राणों का नियम है। वे प्रकाश तथा बाहर की हवा को सहन नहीं कर पाते। भीतर पड़े हुए विचारों को ध्यान द्वारा खींचकर बाहर लाना, आम-न्त्रित मेहमानों को हाथ पकड़कर, बाहर निकालकर अपमानित करने जैसा है। फिर वे अपमानित मेहमान उस घरमें वापस कभी नहीं आयेंगे, शायद बुलायेंगे तो भी नहीं। ठीक यही बर्ताव हमें अपने विचारों के साथ करना होगा।

आपके भीतर प्रवेशित आदरणीय विचारों से परिचय प्राप्त करके उनसे अलग-अलग, एक व्यक्ति की तरह पूछिये, कहिये महाशय? आपकी क्या सेवा की जाय? आप किस कामसे पधारे है? इतना पूछते ही वे विचार शान्तिपूर्वक अपने आप बाहर क्रमशः निकल आयेंगे। उनको समझा-बुझाकर अहिंसक तरीकेसे निकालना है। अगर नाराजगी से या बहुत खुशी होकर विचारों को बाहर निकाल फेंकना चाहेंगे कि ये विचार बहुत खराब हैं, घृणित हैं, मैं इनको बर्दाश्त नहीं कर सकता तो एक बार शायद ये बाहर चले जायेंगे, लेकिन फिर आपकी गफलत से अनजान में वे अधिक वेगसे पुनः भीतर आ सकते है, क्योंकि घृणा में एक प्रकार का भय छिपा रहता है। बहुत रहस्य की बात यह है कि जिससे आदमी जिन विचारों या व्यक्तियों से दूर भागता है उसको वे विचार या व्यक्ति अधिक गहराई में

कर्मः—एक विवेचन

● डा० श्री भागीरथप्रसाद

भारतवर्ष में कर्म की जितनी दुर्व्यवस्था करदी गई है उतनी विश्व के किसी देश में नहीं दिखलाई देती। स्वामी शङ्कराचार्य ने कर्म संन्यास को प्रधानता देकर और मायावाद की महत्ता दिखलाते हुये जगत् मिथ्या के ऊपर ही बल दिया है। इससे सरलतया ही भारत में अकर्मण्यता, त्याग और वैराग्य की प्रधानता आ गई है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि हम जीवन को निःसार समझने लगे। इसीसे सत्तर लाख से अधिक साधु और और भिखमंगे भारतवर्ष में फैले हुए हैं। जिनका भार देश को व्यर्थ ढोना पड़ रहा है।

इनके सिवाय भारत का प्रत्येक प्राणी उक्त भावना के प्रभाव से कार्यक्षेत्र में उत्साह की भूमिका नहीं अदा कर पा रहा है। अतः पंचवर्षीय योजनायें और मानव-जीवन के उत्कर्ष की साधनायें हमारे सामने प्रत्यक्ष नहीं हो पा रही हैं। यही नहीं हजारों वर्ष से जो हम दासता के चंगुल में फंसते चले आ रहे हैं उसका मुख्य कारण हमारी यही भावना है। इनके साथ अन्ध विश्वास, अज्ञानता आदि और भी कुछ कारण हो सकते हैं। पर सबसे प्रबल कारण हमारी अकर्मण्यता ही है, जब हम संसार को मिथ्या ही मानते हैं, तब उसके लिए प्रयत्न करना सम्भव ही कैसे हो सकता है और इसीलिए स्वराज्य मिलने पर भी हम उसी अकर्मण्यता के जाल से मुक्त नहीं हो पाये हैं।

वैदिक काल में यह भावना कदापि नहीं पाई जाती थी। वेदों में सैंकड़ों मन्त्र ऐसे भरे पड़े हैं, जिनसे हमें उत्साहपूर्वक उत्कृष्ट कर्म

बहुत मजबूती से पकड़े हुए होते हैं। घृणा या भय करने पर हमें ऐसा आभास होता है कि हम उन विचारों या व्यक्तियों को छोड़ रहे हैं उनसे मुक्त हो रहे हैं; लेकिन वास्तविक बात बिल्कुल इसके विपरीत होती है। भय का मतलब ही होता है कि उन विचारों ने हमें, हमारी बहुत गहराई में पक्की गाँठ लगा कर पकड़ रखा है। भय से हम जितने उनसे दूर भागेंगे उतनी मात्रा में सम्बन्धित विचार हमें अधिक मजबूती से बाँधे हुए रहते हैं।

निर्भयता से ही आदमी कुछ छोड़ने में समर्थ होता है, भय बाँधता है और निर्भयता छुड़ाती है।

जिन विचारों को हम बार-बार क्रियारूप में आचरण करते हैं वे विचार हमारे अन्दर अधिक पक्के हो जाते हैं। उसकी गहरी लकीर हमारे मन पर खिंच जाती है और वे हमारी आदत के रूप में परिणित हो जाते हैं। ऐसे विचारों को छोड़ने के लिए मन को बार-बार समझाना पड़ता है। जिस अनुपातमें बार-बार के क्रियात्मक रूप से किसीभी विचार का रंग गहरा होता है, उसी अनुपात में उसके गहरे रंगको मिटाने के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

करने की प्रेरणा मिलती थी। ऋषियों और मुनियों ने जो इतना उत्कर्ष आविष्कार कर डाले थे। उसका मुख्य कारण यही था कि उनमें कर्मशीलता की प्रधानता थी और उत्साह की उनमें कभी कमी नहीं हो पाई। इसीलिए उनमें ज्ञान की भी न्यूनता नहीं थी। और वह ज्ञान उनका ऐसा परिष्कृत और विवेकपूर्ण था कि वर्तमान वैज्ञानिक नाममात्र की त्रुटि भी उसमें नहीं निकाल सके हैं। इसीलिए उन्होंने अपने विज्ञान के आधार पर परमात्मा के उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप का भी विश्लेषण और अन्वेषण कर डाला था। इसीसे हम उनकी महत्ता का कुछ अनुमान कर सकते हैं। हमारी मध्यकालीन अज्ञानता ने उस संचित कोष में भी काफी ह्रास कर डाला है। जिसके प्रभाव से हम तथ्य पूर्ण भावनाओं और सत्यनिष्ठा को भी तिरोहित पाते हैं।

गुरु गोरखनाथ कर्मठता की व्याख्या करते हुए मानव-जीवन के लिए उसे कितना आवश्यकीय समझते थे इसे आप उनके ही शब्दों में सुनिये—

"पढ़ि देखि पढिता रहि देपि सारं अपणी करनी उतरिबा पारं।"

बन्दत गोरखनाथ कहि पू साषी घटि-घटि दीपक (बलै) पषि पसू न (पेषै) आंखी ॥

गोरखबाणी छन्द ५९

इसमें गोरखनाथ पण्डित को समझाते हैं कि जो कुछ पढ़ा है उस सार ज्ञान को क्रियात्मक रूप देकर देखो। पार उतरना कोरे ज्ञान से नहीं अपनी करनी (कृत्यों) से ही सम्भव होता है। गोरखनाथ कहते हैं—कि मैं किसी को साक्षी हूं, घर-घर में ब्रह्म की ज्योति जगमगा रही है। इस ज्योति को अपने भीतर बलते देख कर भी पशु अज्ञानी, उसे नहीं जान पाता।

इसमें कवि ने कर्म पर बल दिया है जो कि मूलतत्व है। आपके उपदेशों में जीवन के मूल तत्वों की ही विशेषता मिलती है, इसीलिए गोरख का स्थान राष्ट्रहित की दृष्टि से बहुत ऊँचा है।

इसके पश्चात् गुरु गोरखनाथ फिर कर्म पर बल देते हुए कहते हैं। अवलोकन कीजिए-

कहणि सुहेली रहणि दुहेली
कहणि रहणि बिन थोथी।
पढ्यागुण्या सूवा बिलाईखाया,
पंडित के हाथ रह गई पोथी ॥

गोरखबाणी पृ० ४२

इस पद्य द्वारा गोरखनाथ कहते हैं कि कहना आसान है परन्तु उस कथन के अनुसार रहना कठिन है फिर बिना रहनी के कहना किसी काम का नहीं है, खोखला और छूछा है। तोता पढ़ गुन कर कुछ शब्दों को दुहराना भर सीख लेता है, उसके अनुसार काम नहीं कर सकता और न अर्थ समझता है। ऐसे ही अनुभव हीन पण्डित के हाथ में भी केवल पोथी रह जाती है। सारवस्तु उसके हाथ नहीं आती। परिणामतः वह काल ग्रस्त हो जाता है अतः कर्म की प्रधानता पर गोरखनाथ जी अत्यधिक बल देते हैं

योग विद्या में तो इसके बिना काम ही नहीं चल सकता है, इसीलिए वे कथनी की अपेक्षा करनी को महत्वपूर्ण बतलाते है।

गोरखनाथ के कथन बहुत ही सूत्र रूप में कहे गये हैं परन्तु उसका भावार्थ बहुत गंभीर विस्तृत और गहरे ज्ञान से परिपूर्ण है। अतः आवश्यकता है कि हम उनके कथनों को बहुत ही विवेकपूर्ण ढङ्ग से विस्तार के साथ पाठकों के सामने रखने का प्रयत्न करें।

आगे चलकर गुरु गोरखनाथ रहस्यवादी भावनाओं के ढङ्ग पर कर्म का विस्तार करते हुए कहते हैं:—

गिगनि मंडल मैं गाय बियाई
कागद दही जमाया।
छाछि छांणि पिडता पीवी
सिधा माषण खाया॥
गोरख बाणी पृ० ९६

इसका भावार्थ यह है कि गगन मण्डल में अनुभूति के शिखर पर पहुंच कर सिद्धों ने परमानुभूति प्राप्त की, अर्थात् (उनकी गाय बियाई है) उसी का सार (दुग्ध) खींचकर उन्होंने उसे उपनिषदादिक ग्रन्थों (कागज) में स्थिर रूप दे दिया (दही जमाया)। पण्डितों ने इस दही को छानकर केवल छाछ को ग्रहण किया अर्थात् शब्दों को लेकर उसके तात्विक ज्ञान का परित्याग कर दिया। जिससे वे तथ्य को ग्रहण न कर सके।

इस दोहे से हम यह भी अनुभव करते हैं कि ज्ञान का क्रियात्मक रूप जब तक न हो तब तक वह ज्ञान छाछ के समान ही समझना चाहिए जिसमें मक्खन का पूर्णतया लोप दिखाई पड़ता है। और जब वह ज्ञान क्रियात्मक रूप में आकर मानव को अभिभूत कर लेता है तभी वह सिद्धि को प्राप्त कर लेता है और उसी दिशा में वह सांसारिक क्षेत्र में सफलता पा सकता है और पारलौकिक मोक्ष का भी अधिकारी हो जाता है। जो मानव-जीवन का प्रधान लक्ष्य है। अतः गोरख का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण समझा जाता है।

गुरु गोरखनाथ परमात्मा के विषय में खोजने की चर्चा करते हुए बतलाते हैं कि वह हर समय पास ही प्रस्तुत है, बाहर उसे खोजने की आवश्यकता नहीं है अतः गोरख बाबा कहते हैं:—

तिल कौ नाके तुभवन सांदया
कीया भाव बिधाता।
सो तौ फिर आपण ही
हुआ जाको ढूंडन जाता॥
गोरख बाणी पृ० १०२

इस पद के द्वारा कवि कहता है कि मैंने अनुसंधान कर लिया व छान डाला पर ब्रह्म न मिला। वह तिल की ओट में था परन्तु जब-जब परमात्मा ने कृपा की तो हृदय में भाव उत्पन्न हुआ अर्थात् सच्ची लगन पैदा हुई तो जिसे मैं ढूंढने जा रहा था वह मैं ही हो गया अर्थात् स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो गया। इस प्रकार कवि ने निर्गुणमत का प्रतिपादन कर सगुण का निषेध किया है जो कि वास्तविकता से अनुभव पर निर्धारित किया गया है। इससे उनकी अद्वैत भावना का भी गहरा

आभास मिलता है जिसे उन्होंने शंकराचार्य से ग्रहण किया था।

कबीर के सम्बन्ध में अनेकों विचार-धारायें एवं किंवदन्तियाँ व साखियाँ आदि प्रचलित है इसका कारण यह है कि वे पढ़े-लिखे न थे, हाँ बहुश्रुत अवश्य थे। उन्होंने रामभक्ति का स्वरूप रामानन्द स्वामी से लिया था परन्तु इन्होंने सगुण उपासना ग्रहण न कर निर्गुण राम की उपासना स्वीकार की थी।

कबीर की भावना को समझने के लिए यह विचारधारा अधिक उपयुक्त जान पड़ती है जिसे कबीर के ही शब्दों में सुनिये—

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन ते जागी,
दिन, दिन अधिक चली॥
जहँ-तहँ डोलौं सो परिकरमा,
जो कछु करौं सो सेवा।
जहँ सोवौं तहँ करौं दंडवत,
पूजौं और न देवा॥
कहौं तो नाम सुनौं सो सुमिरन,
खावौं पियौं सो पूजा।
गिरह उजाड़ एक सम लेखौं,
भाव मिटावौं दूजा॥

इससे सरलतया कबीर की प्रणाली का अनुमान कर सकते हैं। इसमें वे निर्गुण व निराकार परमात्मा की उपासना को मानते हैं। वे योग की क्रियाओं द्वारा सहज समाधि तक पहुँच जाना सर्वोत्तम साधना मानते थे। गुरु रामानन्द के प्रताप से उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था और निरन्तर अभ्यास से योग-मार्ग की प्रणाली द्वारा वे समाधि की अवस्था तक जा पहुँचे थे।

उपरोक्त पद में कवि कहता है कि आध्यात्मिक दृष्टि से समाधि सबसे उपयुक्त वस्तु है। गुरु के प्रताप से जब कुण्डलिनी जाग्रत हुई, तो योग में निरन्तर उन्नति होती गई। फिर वे कहते हैं, जहाँ सोते हैं वहीं एक प्रकार की दण्डवत् है और अन्य किसी देवता की पूजा करना व्यर्थ है। भगवान् के नाम का ही उच्चारण करना चाहिए। जो कथायें सुनते हैं वही सुमिरन है। खान-पान ही पूजा है, जिससे आत्म-तुष्टि होती है। घर और जंगल एक-सा समझना चाहिए तथा भेद-भाव के विचार मिटा देने चाहिए।

वे ईश्वर में इतने तन्मय रहते थे कि दैनिक कार्यों में भी आध्यात्मिक झलक पाते थे। वे सबको एक सा समझने पर जोर देते थे। छोटाई-बड़ाई का तिरस्कार ही उनकी मुख्य साधना थी। इस प्रकार से कबीर ने जीवन का अत्युत्तम आदर्श समाज को देने का प्रयत्न किया तथा वे स्पष्ट रूप से राष्ट्र निर्माण के लिए प्रयत्नशील थे। वे पाखण्ड, अंधविश्वास आदि कुरीतियों को दूर करने में सदैव तत्पर रहते थे। ऐसी बातों की निरन्तर तीव्र भर्त्सना करते रहे हैं।

कबीर शरीर के सम्बन्ध में जो भावना देते हैं वह भी वैज्ञानिक आधार लेकर व्यक्त की गई है। इसीलिए वे कहते हैं—

पंचतत्तु मिलि का हुआ कीनी,
तत्तु कहाँ ते कीनु रे।

करम बंध तुम जोइ करत हौ,
करमहि किनि जीउ दीनु रे॥
हरि महि तनु है तनु मति हरि है
सरब निरन्तरि सोइ रे।
कहि कबीर रामनामु न छोड़उ,
सहजे होइ सु होइ रे॥

इसमें कवि कहता है कि पञ्च तत्वों से शरीरकी रचना हुई और ये तत्व कैसे निर्मित हुए। कर्म के बन्धन को ही तुम योग कहते हो, कर्म को किसने जीवन दिया है? फिर कहते हैं कि भगवान् में हमारा शरीर लगा है और शरीर में भगवान् है, इसलिए इसको हमेशा सेवन करो।

आर्य परम्परा से हमारे शास्त्र मानते चले आ रहे हैं कि पञ्च-तत्वों से शरीर की रचना हुई है, वैज्ञानिक रूप भी यही है। अतः इनकी विचारधारा भारतीय परम्परा का अनुकरण करती हुई वैदिक आधार पर ही प्रसारित हुई है। स्वामी रामानन्द की शिष्यता से भी यही बात व्यक्त होती है। शेख तरी के सत्संग में भी कबीर का रहना माना जाता है परन्तु उसमें भारतीय अद्वैत वेदान्त का विदेशी रूप होने से कबीर को ग्राह्य नहीं था। गुरु गोरखनाथ के नाथ सम्प्रदाय के वंश परंपरा से भी इनका सम्बन्ध होने से इनकी भावना का भारतीयकरण होना स्वाभाविक है। फिर इस भावना के साथ आध्यात्मिक सत्ताके रूप में राम (ब्रह्म) की सर्व व्यापकता का स्वरूप भी व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। इसमें कबीर ने ईश्वरीय सत्ता को भीतर व बाहर सर्वत्र सूक्ष्म रूप से व्यापक मानकर जीवन के सम्बन्ध में उसका घनिष्ट तारतम्य दिखला दिया है।

फिर जीवात्मा के विषय में कबीर और भी स्पष्ट रूप से चित्रण करते हुए कर्मठता की सबल भावना को निरन्तर व्यक्त करते रहे है। वे स्वयं जुलाहागीरी करके अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे। इस तरह से वे कर्मठ संत एवं समाज सुधारक व निर्भीक विचारक के रूप में समाज के सामने आये हैं। कविता तो उनके प्रगतिवादी विचारकों को व्यक्त करने के लिए साधन मात्र थी। कबीर प्रपंची साधुओं से बहुत घृणा करते थे और उन्हें खिलाना-पिलाना, दान देना अच्छा नहीं समझते थे। उनकी विचार-धारा इस पद से व्यक्त हुई है—

लरको लरिकन खैबो नाहि।
मुंडीआ अनुदित धाये जाहि॥

अर्थात् बाल-बच्चों को खाने को नहीं मिलता है और ढोंगी मुंडित (संन्यासी) भरपेट माल उड़ाते है। इस प्रकार से सामाजिक दशा का उन्होंने अच्छा चित्रण किया है।

अनुभव से प्राप्त क्रियात्मक रूप सत्यता को प्रत्यक्ष कर देता है। अतः उस दशा में भय का लेशमात्र भी नहीं रहता। जहाँ भय होता है वहाँ कभी भगवान् नहीं रहता। इस कारण वह "संशयात्मा विनश्यति" के सिद्धान्तानुसार परमात्मा से दूर हो जाता है। यथार्थ ज्ञान ही परमात्मा के समीप पहुंचता है। इसीलिए कबीर कहते हैं—

जहँ अनुभव तहँ मैं नहीं,
जहाँ भउ तहँ हरि नाहि।
कह्यो कबीर बिचारि कैं,
सन्त सपनेहुं मन माहि॥

भूल जाओ भलाई करके

श्री विष्णुप्रसाद 'व्यास'

यदि तुम किसी के साथ भलाई करते हो और वह उस भलाई के प्रतीकार स्वरूप तुम्हारा कृतज्ञ होना तो दूर रहा, उल्टा तुम्हारे साथ बुराई करता है तो तुम कदापि चिन्ता न करो। अन्तर्यामी मालिक तुम्हारे भले व्यवहार के फलस्वरूप तुम्हें भलाई ही देगा। उसके घर में देर भले ही हो, परन्तु अन्धेर कदापि नहीं।

यदि तुम किसीके साथ भलाई करके यह इच्छा रखते हो कि वह तुम्हारा उपकार माने और तुम्हारा मान-सम्मान करे तो फिर ऐसा समझना चाहिए कि जैसे वस्त्र-विक्रेता और लौह-विक्रेता लोहा विक्रय करता है, उसी प्रकार तुम भी भलाई विक्रय करने का कार्य करते हो और असत्य मान-सम्मान की प्राप्ति हेतु भलाईरूपी अमूल्य रत्न को विक्रय करने से प्रसन्नता का अनुभव करते हो। अब तुम्हीं बताओ कि यह सामका कार्य नहीं है? निष्काम सेवा करने वाला तो उस सेवा के फलस्वरूप स्वामी को प्राप्त करता है।

मन में कामना रखकर सेवा करने वाला मन की खटाई से कभी भी नहीं बच सकता। उसके भीतर घृणा एवं शत्रुताके विचार उठते ही रहते हैं और अवसर पाकर क्रोध भी अपना प्रभुत्व जमा लेता है, परन्तु फिर भी मनुष्य भूल एवं भ्रम का आखेट होकर अपने को भद्र पुरुष समझता है। ऐसा मनुष्य अपनी भलाई के प्रतिकार स्वरूप मान-सम्मान प्राप्त न होने पर सदैव अशांत रहता है और कुढ़ता भी रहता है। अब विचार करो कि बुरा मनुष्य तो हर समय दुःखी एवं अशान्त रहता ही है, यदि भला मनुष्य भी हर समय अशांत रहे तो भले अथवा बुरे मनुष्य में अन्तर ही क्या रहा? इसीलिए सत्पुरुष चेतावनी देते हैं कि भले मनुष्य को मनसे मान-सम्मान प्राप्ति की कामना को निकाल देना चाहिए, क्योंकि इस कामना से ही दुःख, कष्ट, क्लेश, क्रोध आदि बुराइयों का जन्म होता है।

सद्‌गुरु कहते हैं कि हे शिष्य! असत्य मान-सम्मान को प्राप्त करके क्या करेगा? जबकि सम्पूर्ण जगत् स्वप्नवत् है। जब यहाँ सब कुछ अनित्य है, तो जिस असत्य मान-सम्मान की प्राप्ति की तेरे मन में इच्छा है। क्या वह तेरे किसी काम आवेगी? कदापि नहीं। इसलिए उसकी इच्छा त्याग दे।

सत्पुरुष उपदेश करते हैं कि मान-सम्मान के विचारों को मन से त्याग दो। यदि हम उनके वचनों की अवहेलना करके उसी वस्तु की आकांक्षा मन में रखें जिसके त्यागने का वे हमें आदेश देते हैं और फिर अपने को उनका शिष्य भी समझते रहें तो यह बात कहाँ तक उचित है?

कोई भी कर्म अपना फल दिये बिना नहीं रह सकता और यह भी अटल सिद्धान्त है कि आम का पेड़ लगाकर अखरोट का फल नहीं प्राप्त होता है। आम के पेड़ से तो आम का फल ही प्राप्त होगा। इसीलिए संत कबीर साहिब ने कहा है—

जो तोकों काँटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल।
तोहि फूल के फूल है, वाको है तिरशूल॥

सुकरात, यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक हुए हैं। एक दिन उनकी स्त्री ने उनके ऊपर गंदा जल फेंक दिया, तो उन्होंने हंसते हुए फरमाया कि मेरे मन में कब से यह विचार उठ रहा था कि कभी न कभी तुम वर्षा करके मुझे शीतल कर ही दोगी। आज तुमने मेरे विचार को पूरा कर दिया। हे देवी! तुम धन्य हो।

ऐसे शीतल वचन सुनकर उस देवी की क्रोधाग्नि तुरन्त शान्त हो गई और उसने उनके चरणों में गिरकर क्षमा याचना की। यह है जीवित प्रमाण बुराई के बदले भलाई करने का। इसका परिणाम भी कितना सुखद एवं उत्तम सिद्ध हुआ। यदि सुकरात मन में यह सोचते कि चूंकि मैं इतना प्रसिद्ध व्यक्ति हूँ, मेरे अनेक शिष्य हैं जो मेरा अत्यधिक सम्मान करते हैं और उनके सम्मुख ही इसने मेरा अपमान किया है और क्रोध में आग-बबूला हो जाते तो घर को भी नरक बना देते और उनका जो मान-सम्मान आज जगत् में है शायद वह भी न होता।

एक दिन पार्वतीजी ने भगवान् शङ्कर से पूछा कि आपके सन्तों में कौनसी महानता एवं विशेषता है? भगवान् शंकर ने कहा—

चौपाई

उमा सन्त की इहुई बड़ाई,
मन्द करत जो करइ भलाई।

(रामचरित मानस)

हे पार्वते! सन्तों की यही बड़ाई है कि जो उनके साथ बुराई करता है, वे उसके साथ भी भलाई ही करते हैं।

जैसे कुल्हाड़ा चन्दनकी लकड़ी को काटता है, परन्तु चन्दन उसे सुगन्ध ही प्रदान करता है। इसी प्रकार सन्तजन अहित करने वालों के साथ भी सर्वत्र हित ही करते है।

धर्मपुत्र युधिष्ठिर बहुत ही भले पुरुष थे। कौरवों ने यद्यपि उनके साथ अनेक बार बुरा व्यवहार किया, परन्तु वे उनके साथ सदैव भलाई ही करते रहे। जब पांचों पांडव बारह वर्ष के लिए वनवास में थे, तो उन्हीं दिनों दुर्योधन उन्हें मारने के विचार से सेना लेकर वहाँ आ गया, परन्तु मार्ग में ही उसे युद्ध में पराजित कर गन्धर्वों के राजा चित्रसेन ने बंदी बना लिया।

दुर्योधन के सैनिकों द्वारा यह समाचार जब धर्मराज युधिष्ठिर को ज्ञात हुआ तो उन्होंने अपने भाइयों को आदेश दिया कि तुम सब जाओ और दुर्योधन आदि को गन्धर्वों के बन्धन से मुक्त कराओ। महाराज युधिष्ठिर की यह बात भीमसेन एवं अर्जुन आदि को उचित प्रतीत न हुई और उन्होंने इसका प्रतिवाद करते हुए विनय की कि ये लोग तो हमारे प्राण हरने के लिए ही आये थे, अच्छा हुआ कि वे स्वयं ही बन्दी बना लिये गये। यह सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा कि इस समय तुम लोग सब बातों को भूलकर उनकी सहायता करो, यह मेरी आज्ञा है। चारों भाइयों ने उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर दुर्योधन आदि को गन्धर्वों के बन्धन से मुक्ति दिलाई।

ऐसे भले कामों का फल भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हें यह दिया कि उनके सहायक एवं रक्षक बनकर समय-समय पर गुप्त रूप में उनकी सहायता एवं रक्षा करते रहे।

हम भी यही चाहते हैं कि भगवान् हम पर सदैव कृपा करें और समय-समय पर हमारी सहायता करते रहें तो उनकी कृपा प्राप्त करने का यही साधन है कि जहाँ तक हो सके हम बुरे का भी भला चाहें और अपने हृदय में शत्रुता, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष आदि कुत्सित विचारों को कदापि घुसने न दें, उसमें सदैव परमेश्वर का प्रेम और पवित्र नाम को बसाकर हर समय उसे पवित्र एवं शुद्ध बनायें।

जयदेवजी एक प्रसिद्ध भक्त हुये हैं। वे एक बार जयपुर गये। वहाँ के राजा ने भण्डारा किया। भोजनोपरान्त राजा ने उन्हें कुछ धन भेंट किया। जयदेवजी ने कहा हम इस धन को लेकर क्या करेंगे और कहाँ सम्हाले फिरेंगे? किन्तु राजा न माना और वह धन गुदड़ी में सिलवा दिया।

ज्योंही वे नगर के बाहर निकले, कुछ दुष्ट व्यक्तियों ने उन्हें घेर लिया, और कहा कि जो कुछ तुम्हारे पास हो, सत्य-सत्य बतादो। उन्होंने गुदड़ी वाला धन उनको दे दिया, किन्तु वह तो दुष्ट व्यक्ति थे, उनको तो दुष्टता करनी थी। उन्होंने सोचा कि आगे चलकर यह व्यक्ति हमें पकड़वा देगा, इसलिये अच्छा है कि इसके हाथ पैर काट-कर यहीं कुएं में फेंक दें। यह परामर्श करके उन्होंने भक्त जयदेवजी के हाथ काटकर उन्हें एक कुएं में फेंक दिया।

अनायास एक राजा शिकार खेलता हुआ, उधर आ निकला, उसके साथियों ने जल निकालने के लिये जब कुएं में झांका तो उन्हें जयदेवजी दिखाई दिये। उन्होंने उन्हें बाहर निकाला और राजा के पास ले गये। राजा ने जब भक्तजी से पूछा कि किसने आपके हाथ काटकर आपको कुएं में गिराया है तो भक्तजी ने उत्तर दिया—मेरे प्रारब्ध ने मेरे हाथ काटकर कुएं में गिराया है और अब मेरे भाग्य ने ही मुझे बाहर निकाला है।

इस उत्तर से राजा समझ गया कि ये कोई परमेश्वर के सच्चे भक्त हैं। वह उन्हें बड़े आदर सम्मान के साथ अपनी राजधानी में ले गया। वहाँ उसने उन्हें बड़े आदर सम्मान के साथ अपनी राजधानी में रखा। वहाँ उसने एक सत्संग आश्रम व धर्मशाला का निर्माण कराया और स्वयं भी सन्त सेवी बन गया। वहाँ जो भी साधु महात्मा आते, उनकी बड़ी आवभगत होती।

साधु सेवा की चर्चा सुनकर वही दुष्ट लोग भी साधु वेश में वहाँ आये, परन्तु ज्योंही उन्होंने भक्त जयदेवजी को देखा तो घबराकर वापस जाने लगे किन्तु जयदेवजी ने उनके साथ अत्यन्त प्रेम का व्यवहार किया और उनके रहने एवं भोजन आदि का उचित प्रबन्ध कराया। उनकी हर प्रकार से सेवा होने लगी। कुछ दिन ठहरने के पश्चात् जब वे जाने लगे तो भक्तजी ने राजा से कहकर बहुत से धन पदार्थ उन्हें दिलवाये। पहुंचाने के लिये राज्य कर्मचारी भी साथ पहुंचाने गये।

मार्ग में उन राज्य कर्मचारियों ने भेष-धारी साधुओं से पूछा कि अन्य साधुओं की अपेक्षा आपका अत्यधिक सम्मान व सत्कार किया गया है। इसका क्या कारण है?

उन्होंने उत्तर दिया—यह भक्त हमारे गाँव का है और पहिले एक प्रसिद्ध डाकू था। इसने एक दिन बहुत बड़ा डाका डाला, परन्तु वह उस डाके में पकड़ा गया। राजा तो इसे प्राण दण्ड देना चाहता था, परन्तु हमारे कहने पर राजा ने प्राण दण्ड न देकर इसके हाथ काटकर कुएँ में फिकवा दिये। अब यह यहाँ आकर भक्त बन बैठा है।

जब उन्होंने ऐसा कहा तो धरती फट गई और वे दुष्ट उसमें दब गये। यह घटना देख-कर राज्य कर्मचारी अत्यन्त विस्मित हुए। उन्होंने वापस आकर राजा एवं भक्तजी के समक्ष सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। जिसे सुनकर जयदेवजी को अत्यन्त खेद हुआ और खेदपूर्ण स्थिति में जैसे ही उन्होंने हाथ मले तो भगवान की कृपा से उनके हाथ फिर से बन गये।

यह देखकर राजा को विस्मित हुआ और भक्त जयदेवजी को वास्तविकता बताने के लिए विनय की। तब जयदेवजी ने सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया राजा एवं दरबारियों के मुख से धन्य-धन्य के शब्द निकलने लगे और वे अपना भाग्य सराहते हुए कहने लगे, हम कितने भाग्यशाली हैं जो हमें आप जैसे महात्मा पुरुष का मिलाप हो गया है जिनकी संगति में हमें ऐसी-ऐसी शिक्षायें मिलती रहती हैं, जिनका बदला हम चुका ही नहीं सकते।

ऐसी अनेक कथायें इतिहास में वर्णित हैं जिनके पढ़ने सुनने से हमारा भी अपने इष्ट-देव गुरुदेवजी के श्री वचनों में दृढ़ विश्वास होता है, मन शुद्ध निर्मल होकर भक्ति में लगता है, भगवान का आश्रय प्राप्त होता है तथा दैवी हाथ सदैव रक्षा करता है।

आप अपने मन से क्रोध को निकालकर बुरे मनुष्य के साथ भी भलाई किये जाओ। ऐसा करने से तुम्हारे शरीर में कोई रोग नहीं लगेगा और आपको सब कुछ प्राप्त होगा।

—० ध्यानं निर्विषयं मनः ०—

—योग दर्शन

मन का विषयों से ऊपर उठना ही ध्यान है!

'क्या करें पूजा में ध्यान नहीं लगता है' ऐसा कहने वाले ध्यान को मन का केन्द्री-करण समझते हैं जो कि कहीं बाहर मन को कील ठोकने की भाँति केन्द्रित कर देने के समान है। त्राटक आदि क्रियायें मन को बरबस केन्द्रित एवं एकाग्र कर देने में सहायक होती हैं। किन्तु यह ध्यान से भिन्न है तथा अध्यात्म साधक के लिए विशेष उपयोगी नहीं है। ध्यान का अर्थ अवधान (एटेन्शन) का केन्द्रीयकरण नहीं है, बल्कि केवल बाह्य पर्या-वरण से ही अपने चिन्तन (इच्छाओं, भावों, विचारों) से भी ऊपर उठकर आत्म संस्थित होना है। ऐसा होना ही मन का निर्विषय हो जाना कहा जा सकता है। —शिवानन्द

ईश्वर की उपासना क्यों और कैसे ?

श्री इन्द्रराज

ओं उत स्वया तन्वा संवदे,
तत्कदान्वन्तर्वरुणे भुवानि ।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेतकदा,
मृळीकं सुमना अभिख्यम् ॥

अर्थ—(उत स्वया तन्वा संवदे) हाँ ! मैं अपनी देह से संवाद करता हूँ—पूछता हूँ (तत्-कदा-नु-वरुणे; अन्तः भुवानि) तो फिर कब वरने योग्य एवं वरने वाले परमात्मा वरुणदेव के अन्दर विराजमान होऊँ—ऐसा दिन कब आयेगा। जबकि मैं वरने योग्य और वरने वाले अपने परमात्मा में अपनेको विराजमान हुआ देखूँ ! (मे) मेरी (किं हव्यम्) किस भेंटको (अहृणानः-जुषेत) स्वागत करता हुआ स्वीकार करे (कदा मृळीकं सुमनाः अभिख्यम्) कब मैं सुखस्वरूप, आनन्द रूप परमात्मा को पवित्र मन वाला और निग्रह वाला होकर देख सकूँ ।

व्याख्या एवं भावार्थ

इस मंत्र में एक उपासक के हृदय की तड़प उस वरने योग्य परब्रह्म परमात्मा के प्रति दर्शायी गई है। साथ ही किस प्रकार उस परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति होती है, यह भी बहुत सुन्दर शब्दों में बताया गया है। इस मंत्र पर विस्तार से विचार करने से पूर्व यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि परमात्मा की उपासना की क्या आवश्यकता है? अथवा उसकी उपासना क्यों करनी चाहिए?

हम सब अनुभव करते हैं कि इस चलते-फिरते दिखलाई देने वाले शरीर में चार वस्तुएँ मुख्य रूप से विराजमान हैं—(१) इन्द्रियाँ अथवा स्थूल शरीर, (२) मन, (३) बुद्धि, (४) आत्मा। इन चारों पदार्थों के लिए किसी न किसी प्रकार के भोजन की आवश्यकता है। अन्न और धनके बिना यह शरीर चल नहीं सकता। इसी अन्न और धन को हम अर्थ के नाम से भी पुकार सकते हैं अर्थात् शरीर के लिए अर्थ रूपी भोजन की आवश्यकता है। दूसरा पदार्थ हमारे पास मन है। मन हमेशा कामनाएँ करता रहता है। शास्त्रकार भी कहते हैं—'संकल्प विकल्पात्मकं मनः' अर्थात् संकल्प-विकल्प करने वाला मन है। इस संकल्प-विकल्प को ही दूसरे शब्दों में काम के नाम से पुकारते हैं, तो इस प्रकार मनका भोजन काम ठहरता है। तीसरी वस्तु हमारे पास बुद्धि है। बुद्धि का कार्य निश्चय करने का है। अच्छा क्या है, बुरा क्या है? इसका सदैव विवेक करते रहना यह बुद्धि का कार्य है। इसी सद्-विवेक को ही धर्म के नाम से पुकारते हैं। इस प्रकार बुद्धि का भोजन धर्म है। इन तीनों पदार्थों के भोजन का पता लगाने के पश्चात् अब प्रश्न यह पैदा होता है कि आत्मा का भोजन क्या है? आत्म-तत्त्व अनन्त काल से आनन्द की खोज में एक विशाल यात्रा पर निकला है। वह उस आनन्द को प्राकृतिक पदार्थों से

प्राप्त करना चाहता है। वह कभी धन कमाने को ही आनन्द समझता है, कभी वह परिवार बनाने में ही आनन्द मान बैठता है। कभी वह अधिकार एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करने में ही आनन्द समझता है। इस प्रकार प्राकृतिक वस्तुओं की प्राप्ति में खून-पसीना एक करता हुआ वह आनन्द को प्राप्त करना चाहता है, परन्तु यह प्राकृतिक पदार्थ बड़े चंचल, सदैव परिवर्तनशील उसको पग-पग पर ठोकरें मारते हुए, दुःख-सागर में धकेल देते हैं। वह जीवात्मा इन भौतिक पदार्थों से आनन्द की कामना करता हुआ, अनायास दुःख, क्लेश और संकटों में फंसकर दुर्दशा को प्राप्त होता है। हमारे तपस्वी साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों का कहना है कि जीवात्मा को यदि आनन्द की चाह है, तो उसे आनन्द के स्रोत के पास ही जाना होगा। उसे आनन्द वहाँ से मिलेगा ही नहीं, जहाँ लेशमात्र आनन्द नहीं है। इन प्राकृतिक और भौतिक पदार्थों में तो सुख-दुःख निहित है। वह सुख भी दुःख परिणामी है, इसलिये प्राकृतिक पदार्थों की उपासना से और उनके सम्पर्क तथा संसर्ग से तो दुःख की ही प्राप्ति होगी। यदि आनन्द प्राप्त करना है तो आनन्द के भंडार सच्चिदानन्द स्वरूप परमपिता परमात्मा की शरण में ही जाना होगा और अपने सब क्रिया-कलापों को अध्यात्ममुखी बनाना होगा अर्थात् अर्थ और काम से पूर्व धर्म की स्थापना करनी होगी। धर्मपूर्वक अर्थ कमाना होगा और धर्मपूर्वक ही कामनाएं करनी होंगी तभी हमारा आनंद प्राप्ति का मार्ग सुगम बन सकेगा। इस बात को दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि इस जीवात्मा का भोजन आनन्दस्वरूप परमात्मा ही है। उपनिषद्कार भी इस बात की पुष्टि करते हैं 'अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्' अर्थात्—परमात्मा कहता है कि मैं अन्न हूं। मैं जीवात्मा का अन्न हूं। मैं भक्तों के द्वारा अन्न रूप में खाया जाता हूं। जीवात्मा का भोजन परब्रह्म आनन्दस्वरूप परमात्मा ही है, ऐसा निश्चय हो जाने पर यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि जीवात्मा के लिए ईश्वर की उपासना अत्यन्त आवश्यक है।

अब दूसरे रूप से थोड़ा विचार करना प्रारम्भ करें। हम छोटे-छोटे कार्यों के लिए एक दूसरे को धन्यवाद देते हैं। जरा-सा आपने मेरा काम किया, मैंने आपको धन्यवाद दे दिया। सांसारिक लोग तो बड़े विचित्र ढङ्ग से एक दूसरे को धन्यवाद देते हैं। इसको एक दृष्टान्त के द्वारा समझाया जा सकता है। एक व्यक्ति जब आँखों की ज्योति कम हो गयी तो वह एक नेत्र विशेषज्ञ के पास पहुंचा। उसने डाक्टर साहब से नेत्रों की परीक्षा करने के लिए विनम्र प्रार्थना की। डाक्टर महोदय ने नेत्रों की परीक्षा करने के पश्चात् २५ रुपया अपनी फीस मांग ली। फीस देने के पश्चात् उस व्यक्ति ने डाक्टर साहब को एक चश्मे का आर्डर भी दे दिया। डाक्टर साहब ने एक सप्ताह के बाद आकर चश्मा ले जाने को कहा। एक सप्ताह के बाद आकर उसने चश्मे का मूल्य देकर चश्मा लिया और

चश्मे को टैस्ट करने के लिए किताब पढ़ने लगा। किताब पढ़ने में सफल हो जाने पर वह डाक्टर साहब को धन्यवाद और आशीर्वाद देता है (बावजूद इसके कि वह डाक्टर को उसकी फीस और चश्मे का मूल्य पहले ही दे चुकता है)। मनीषियों का कहना है कि ए लोगों ! जब एक डाक्टर को तुम इसलिए बारम्बार धन्यवाद दे रहे हो कि उसने अपनी फीस और चश्मे का मूल्य लेकर तुम्हें चश्मे के सहारे पुनः दृष्टि प्रदान करदी, तो उस परब्रह्म परमात्मा का धन्यवाद क्यों नहीं करते कि जिसने तुमको दो अमूल्य आँखें दी हैं, जिनके न होने से डाक्टर द्वारा दिए जाने वाले हजार चश्मे भी बेकार साबित होते। उस परमात्मा ने हमें आँखें ही नहीं, सुन्दर शरीर, वैभव, प्रतिष्ठा, परिवार और यहाँ तक कि अमूल्य प्राण तक दे रखे हैं जिनके बिना हम क्षण-भर भी जीवित नहीं रह सकते। अतः उस परमपिता परमात्मा का कोटिशः धन्यवाद और नमन् करना चाहिए जो कि उसकी उपासना के बिना नहीं हो सकता। इसीलिए कृतज्ञता का प्रकाशन करने के लिए, जीवात्मा के लिए परमात्मा की उपासना करना अत्यन्त आवश्यक है।

कुछ भाई ऐसा भी कहते हैं कि परमात्मा की उपासना की कोई आवश्यकता नहीं है। व्यक्ति को अच्छे कर्म करने चाहिए। इस प्रश्न पर भी हमारे मनीषियों ने विचार किया। उनका कहना है कि एक चित्रकार एक बहुत सुन्दर चित्र बना रहा है। जब तक वह चित्र के निर्माण में संलग्न है तब तक उसे यह ठीक पता नहीं लग सकता कि वह जिस चित्र को बना रहा है वह ठीक बन भी रहा है या नहीं। वह जब उस चित्र को दूर से और बड़े ध्यान से देखता है तब उसे उसकी कमियों का तुरन्त पता चल जाता है। ठीक इसी प्रकार संसार के कार्यों में निरंतर संलग्न व्यक्ति संसार के निरन्तर सम्पर्क में रहता हुआ यह नहीं जान सकता है कि वह संसार में जिस चित्र को बना रहा है वह ठीक भी बन रहा है अथवा नहीं ? प्रातः-सायं इस संसाररूपी चित्र से दूर रहकर चिंतन के क्षेत्र में पहुँचकर ही वास्तविकता का पता चलता है कि चित्र ठीक भी बन रहा है अथवा नहीं। यह एकांत चिंतन और कुछ नहीं, यही प्रभु की उपासना है। हमारे जीवन में उपासना का कितना महत्त्व है। उपर्युक्त उदाहरण से भली-भाँति विदित हो जाता है।

पीछे कहा जा चुका है कि जीवात्मा अनन्त आनन्द की खोज में एक लम्बी यात्रा पर निकला हुआ है। इस आनन्द को प्राप्त करने के लिए वह नाना प्रकार के कर्मों और वासनाओं के आधार पर, नाना प्रकार के शरीरों को धारण करता हुआ, नाना प्रकार की योनियों में जा चुका है। इन योनियों की गिनती कौन करे ? पुराण के एक लेख के अनुसार ये ८४ लाख योनियाँ हैं। आज का विज्ञान भी इन योनियों को कई हजार तक गिन चुका है। शास्त्रकारों का कथन है कि मानव योनि को छोड़कर शेष सब भोग-योनियाँ हैं, इनमें अज्ञानरूपी अंधकार है।

केवल मानव-योनि में बुद्धिरूपी प्रकाश के दर्शन होते हैं। मानव तन ही परमात्मा का प्रवेश द्वार है। जो व्यक्ति मानव तन प्राप्त करके भी पशु-तुल्य वासनाओं और चेष्टाओं में लिप्त है, उसका बड़ा दुर्भाग्य है, जो व्यक्ति नर-तन प्राप्त करके भी परमपिता परमात्मा को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करता, वह बहुत ही दुर्भाग्यशाली है। इसीलिए वेद-मंत्र में अपनी देहसे ही संवाद का एक दृश्य दृष्टि-गोचर हो रहा है। एक उपासक अपनी देह से संवाद करता हुआ उससे पूछ रहा है कि ऐ मेरी देह ! तू बता कि 'तत् कदा नु वरुणे अन्तः भुवानि' कि कब मैं वरने योग्य अथवा वरने वाले वरुणदेव भगवान् के अन्दर अपने आपको विराजमान हुआ देखूंगा। ऐ मेरी देह ! तूने मुझे अब तक नाना योनियों में धकेलकर बहुत भटकाया है। यदि तू अच्छे कर्म करती तो मैं कदापि नीच योनियों में पहुंचकर अज्ञानरूपी अन्धकार में ठोकरें न खाता, दर-दर न भटकता। ऐ देह ! क्या तेरा ऐसा ही कर्तव्य है कि तू विषयों की दास बनाकर मुझे पतन और नरक के गड्ढे में गिरा दे। नहीं-नहीं ! वेद ने तो तुझे देव-ताओं की अयोध्या नगरी कहा है। शास्त्र-कार तो तुझे मुक्ति का द्वार बता रहे हैं। फिर मैं तुझे प्राप्त करके उस दिव्य प्रकाश-स्वरूप आनन्दमय भगवान् के दर्शन क्यों नहीं कर पा रहा हूँ ? ओहो ! मैं अज्ञानी हूँ। मैं उस कमनीय भगवान् को इन चरम चक्षुओं से देखना चाहता हूँ, जबकि शास्त्रकार उच्च स्वर से पुकार-पुकारकर कह रहे हैं—

> न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य,
> न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
> हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो,
> य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।
>
> —कठ० अध्याय २ वल्ली ३ श्लोक ९

अर्थात्—इस आत्मा का रूप दृष्टि में नहीं ठहरता। आँख ही क्या, वह किसी भी इन्द्रिय का विषय नहीं है। हो भी कैसे ! जब उस आनन्द स्वरूप भगवान् की कोई प्रतिमा (मूर्ति) ही नहीं है। वेद कहता है—'न तस्य प्रतिमा अस्ति' (यजु० ३२/३) अर्थात् उस परमात्मा की प्रतिमा-परिमाण, उसके तुल्य अधिक साधन प्रतिकृति, मूर्ति व आकृति ही नहीं है। इसी प्रकार से अन्यत्र यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के ८ वें मंत्र में पुनः कहा गया है कि भगवान् 'अकाय' है अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर रहित है। वह भगवान् (अस्नाविरम्) है अर्थात् नस, नाड़ी आदि के साथ सम्बन्ध के रूप बन्धनसे रहित है। ऐसी स्थिति में वह इन आँखों से कैसे दिखलाई दे सकता है। वह तो समस्त इन्द्रियों की पहुंच से परे है, तो फिर उसके दर्शन मैं किस प्रकारसे कर सकता हूँ। उपर्युक्त श्लोक में आया है कि वह भगवान् (हृदा हृत्स्थया बुद्ध्या) हृदय स्थित बुद्धि (मनीषा-मनसः सङ्कल्पादि रूपस्येष्टे नियन्तृत्वेनेति मनीट् तया हृदा मनीषा विकल्पवित्रया, मनसा-मननरूपेण सम्यग्दर्शनेन, अभिक्लृप्तोऽभि-समर्थितोऽभिप्रकाशित इत्येतत् (शां० भाष्य०)

जोकि सङ्कल्पादि रूप मन की नियन्त्री होकर ईशन करने के कारण 'मनीट्' है, उस विकल्प शून्या बुद्धि से मन अर्थात् मननरूप यथार्थ दर्शन द्वारा सब प्रकार समर्थित अर्थात् प्रकाशित हुआ वह परमात्मा माना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त उपनिषद्कार अन्यत्र भी परमात्म-दर्शन के विषय पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

एव सर्वेषु भूतेषु
गूढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्‌यया बुद्धया
सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभि: ॥

—कठ० अ० १ वल्ली ३ श्लोक १२

अर्थात्—सम्पूर्ण भूतों से छिपा हुआ वह परमात्मा प्रकाशमान नहीं होता। वह तो सूक्ष्मदर्शी पुरुषों द्वारा अपनी तीव्र और सूक्ष्म बुद्धि से ही देखा जा सकता है।

उपर्युक्त शास्त्र वचनों से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि वह परब्रह्म परमात्मा इन भौतिक आँखों से नहीं देखा जा सकता है। कुछ लोग इस पर भी शङ्का कर सकते हैं कि आँखों से दिखलाई न देने के कई अन्य कारण भी हो सकते हैं। हो सकता है कि वह परमात्मा अन्धेरे के कारण न दिखाई देता हो। उसे हम सूर्य के, चाँद के, तारागण के, बिजली के अथवा अग्नि के प्रकाश में देखने में समर्थ हो सकते हो। इन शंकाओं को भी निर्मूल करते हुए शास्त्रकार कहते हैं—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्नि:।
तमेव भांतमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

अर्थात्—उस आत्मलोक में सूर्य प्रकाशित नहीं होता, चन्द्रमा और तारे भी नहीं चमकते और न वहाँ विद्युत ही चमचमाती है फिर उस अग्नि की तो बात ही क्या है? अर्थात्—यह सब प्रकाशक-पदार्थ उस परब्रह्म परमात्मा को प्रकाशित करने में असमर्थ हैं। उस परमात्मा के प्रकाशमान होने से ही यह सब कुछ प्रकाशित होता है, उसका प्रकाश ही इन सब प्रकाशित पदार्थों को भी प्रकाशित करता है।

स्पष्ट है कि इन्द्रियां किसी भी अवस्था में उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमात्मा को देखने का सामर्थ्य नहीं रखतीं। वह परमात्मा जो मन पर शासन करने वाली विकल्प शून्य, सूक्ष्म, तीव्र और पवित्र बुद्धि द्वारा अनुभव करने योग्य है। इस प्रकार की बुद्धि कैसे प्राप्त की जाए, इस संदर्भ में वेद कहता है कि कोई न कोई अपनी प्रिय भेंट उस परब्रह्म परमात्मा को अर्पित करनी पड़ेगी, जिसको वह सहर्ष स्वीकार कर लेवे। अब मैं पुन: अपनी देह से ही पूछता हूं कि वह कौन सी प्रिय वस्तु हो सकती है, जो मैं उस परमदेव परमेश्वर को भेंट कर सकता हूं। मेरी देह तो जन्म से लेकर मरण पर्यन्त मेरी जीवात्मा के साथ ही रहती है। संसार का कौन-सा जड़ पदार्थ है जो कि मैं उसको भेंट करूँ। वह तो सारे

संसार का मालिक ही है। इस प्राकृतिक संसार की किसी भी वस्तु पर मेरा अधिकार ही नहीं है, ये सब वस्तु तो उसी के अधिकार में है और इन वस्तुओं की उसे न इच्छा है और न ही आवश्यकता। फिर वह कि मे हृदयमह्वानो जुषेत' मेरी किस भेंट को स्वीकार कर सकता है? ओहो! मेरी समझ में आया कि मैं उसे एक वस्तु को भेंट कर सकता हूं और वह है मेरा मन। मन है तो मेरा परन्तु इस समय मेरे अहित चिन्तक शत्रुओं में आसक्त है, वह पापों में और दुरितों में लिप्त है। काम-क्रोधादि आसक्तियों में लिप्त हुआ बरबस मुझे भी त्रिविध बंधनों में जकड़ रहा है। पापी मन को तो वह भगवान स्वीकार भी नहीं कर सकता। और पापी मन तो उसकी शरण में जा भी नहीं सकता। मैं अपने मन में उसके पवित्र 'ओ३म्' नाम को बसा लूं, उसी पवित्र नाम का स्मरण करूं, तभी तो वह मेरी इस सुन्दरतम भेंट को स्वीकार कर मेरे हृदयरूपी आसन पर विराजमान हो सकेगा।

किसी विद्वान ने इस समस्या का समाधान करते हुए कितना सुन्दर दृष्टांत प्रस्तुत किया है—एक साधु भिक्षा मांगते हुए नगर में किसी माता के द्वार पर पहुंचा। वहां पर उसने भिक्षा के लिए आवाज लगाई। भगवति! भिक्षां देहि! माता भिक्षा लेकर द्वार पर आयी। उसने भिक्षा तो दे दी परन्तु साधुजी से विनम्र प्रार्थना की—महाराज मेरी भी कुछ इच्छा है। आप सिद्ध पुरुष हैं। कृपा करके मेरी मनोकामना भी पूर्ण कर दीजिए। प्रभु दर्शन की मेरी अभिलाषा है, आप उसे पूरा करने में समर्थ हैं। कृपया मुझे प्रभु के दर्शन करवा दीजिए। साधुजी ऐसा सुनकर कुछ सोच में पड़ गए, सहसा कहने लगे—'अच्छा माँ! मैं कल आऊंगा और तुम्हें भगवान के दर्शन करवा दूंगा।' माता ने प्रत्युत्तर में कहा, 'महाराज'! जब आप कल पधारेंगे तो भोजन भी मेरे यहाँ ही कर लीजिए, मैं भोजन तैयार कर दूंगी। साधुजी ने स्वीकृति दे दी और अपनी कुटिया पर लौटकर आ गए। भोजनादि से निवृत्त होकर सोचने लगे कि माता को भगवान के दर्शन कैसे करवाऊं? वह भगवान तो इन आँखों से दिखाई नहीं देता। माता इन आँखों से उस अतीन्द्रिय भगवान के दर्शन करना चाहती है। कैसे करा पाऊँगा उनके दर्शन? महात्मा इसी विचारधारा में निमग्न हो गए। दूसरे दिन तक उनको इस समस्या का समाधान नहीं हो सका। वह भोजन का समय हो जाने पर अपनी कुटिया से माता के घर की ओर चल पड़े। मार्ग में जाते हुए उनकी दृष्टि गोबर पर पड़ी। गोबर को देखते ही समस्या का समाधान हो गया, उस गोबर को उन्होंने अपने कमण्डल में भर लिया और बहुत ही शीघ्रता से पहुंचकर माता के द्वार पर भिक्षा के लिए आवाज लगाई। माता भोजनादि से निवृत्त होकर बड़ी व्यग्रता से उनकी प्रतीक्षा कर रही थी, साधु की आवाज सुनते ही माता दौड़ी हुई बाहर आई और विनयपूर्वक बोली—

भगवान् ! आप अन्दर पधारिए, भोजन कीजिये और फिर मुझको परमात्मा के दर्शन कराइये।' साधु महाराज बोले—माँ ! साधु अन्दर बैठकर भोजन नहीं करते, वे तो अपने कमण्डल में भिक्षा माँगते हैं और अपनी कुटिया पर जाकर भोजन करते हैं। तू भोजन ले आ, हमारे कमण्डल में डाल दे तब हम तुझे भगवान् के दर्शन करायेंगे। माता शीघ्र अंदर गई और एक थालीमें श्रद्धापूर्वक बनाया भोजन परोसकर कमण्डल में डालने के लिए बाहर ले आई। माता ज्योंही भोजन कमंडल में डालने लगी तभी उसने देखा कि कमण्डल में तो गोबर भरा हुआ है। माता सहसा रुक गई और साधु से बोली—महाराज ! आपका दिमाग तो ठीक है, आपने तो अपने कमंडल में पहले से ही गोबर भरा हुआ है, यदि इसमें मैं भोजन डाल देती तो यह भी दूषित हो जाता। महात्मा इस बात को सुन कर खिलखिलाकर हँसे और मातासे बोले— माँ ! तू अपना दो-चार रुपये का भोजन मेरे कमण्डल में इसलिए नहीं डालना चाहती है कि इसमें पड़े गोबर से यह दूषित हो जायगा तो अब तू ही बता कि तेरे मनरूपी भिक्षा-पात्र (कमण्डल) में जो जन्म-जन्मान्तर की बुराइयों के गोबर से भरा हुआ है, उसमें मैं अपने सुन्दरतम् अमूल्य भगवान् को कैसे उतार दूँ ? बस, बुढ़ा माता की समस्या का समाधान हो गया।

इस दृष्टांत के पश्चात् तो समझ में आता है कि उस भगवान् को पवित्र मन की भेंट को स्वीकार भी कर सकता है। इसलिए इस मन्त्र में आगे कहा गया है—'कदा मृळीकं सुमना अभिख्यम्।' ऐ मेरी देह ! तू बता कि मैं कब उस आनंदस्वरूप भगवान् को 'सुमना' पवित्र मनवाला और निरुद्ध मनवाला होकर देख सकूँगा।

परब्रह्म परमात्मा का दर्शन तो सुमन ही करवा सकता है। पवित्र मन से उस परम-पूजनीय भगवान् की आराधना हो सकती है। परन्तु जब किसी नवयुवक से प्रभु आराधना की बात कही जाती है, तो वह कह उठता है कि अभी तो जवानी है, कमाने-खाने का समय है, कमाने-खाने दो। जब वृद्धावस्था आयेगी, तो जैसा तुम कहोगे वैसा ही कर लेंगे। प्रभु-भजन की बात तो वृद्धावस्था की है, उसे तुम जवानी में लाकर हमारे जीवन को नीरस बना देना चाहते हो !

परन्तु यह उत्तर ठीक नहीं है। हमें पर-मात्मा को सुन्दर भेंट देनी है। क्या यह उचित है कि हम अपनी जवानी की भेंट तो विषय-विकारों को दे देवें और सब रोगों का सदन बुढ़ापा उस प्रभु को अर्पित करें। नहीं-नहीं, हमें तो अपनी-अपनी इस देह में रहते हुए ही उसके दर्शन करने हैं। यदि देह जीर्ण-शीर्ण होगी, यदि इस देह के अंग-प्रत्यंग में पीड़ायें होंगी और समस्त रोग इस देह पर चील-कौए की तरह आक्रमण करेंगे तो इस में स्वस्थ और सु-मन कैसे रह सकेगा ? हम अपने सु-मन की भेंट उस परब्रह्म पर-मात्मा को कैसे दे सकेंगे ? यदि हमें प्रभु को

यम-नियमों की व्याख्या

भगवत्-पूजन का महात्म्य

वैद्य श्री रामधन शर्मा 'शास्त्री'

पुराणों में योग का विषय कूट-कूटकर भरा है। किसी पुराण में दत्तात्रेयजी का तो किन्हींमें अन्य ऋषि-मुनियों द्वारा योग विषय वर्णित है। यहाँ मैं अग्नि-पुराण में अग्नि-देवजी द्वारा वर्णित यम-नियम की व्याख्या प्रस्तुत कर रहा हूँ—

अष्टांग-योग विश्व-विख्यात है, जिसमें मोक्ष का मार्ग दर्शाया गया है, जो जगत् में त्रिविध ताप से छुटकारा दिलाने का साधन है। 'ब्रह्म' को प्रकाशित करने वाला ज्ञान भी योग से ही सुलभ होता है। एकचित्त होना अर्थात् चित्त का एक जगह स्थापित करना योग है। पतंजलि मुनि लिखते हैं—'चित्त-वृत्ति निरोधः योगः' (अर्थात् चित्तकी वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं)। जीवात्मा और परमात्मा में ही अन्तःकरण की वृत्तियों का स्थापित करना उत्तम योग है। अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यह 'यम' है। नियम भी पाँच हैं जो भोग और मोक्ष प्रदान करने वाले हैं, उनके नाम हैं—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वराधन (ईश्वर प्रणिधान)।

अहिंसा

किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुँचना अहिंसा है जो सबसे उत्तम धर्म है। जैसे राह चलने वाले प्राणियों के पद-चिह्न उस मार्ग से होकर पहले गुजरे हाथी के पद-चिह्न में समा जाते हैं, उसी प्रकार धर्मके सभी साधन अहिंसा में गतार्थ माने जाते हैं। अहिंसा के दस भेद हैं—(१) किसीको उद्वेग में न डालना, (२) सन्ताप न देना, (३) रोगी न बनाना, (४) शरीर से रक्त न निकालना, (५) चुगली खाना,

---

सु-मन भेंट करना है जो स्वस्थ शरीर की आवश्यकता है जो हमें युवावस्था में ही प्राप्त हो सकता है। इसी युवावस्था में हम योग-साधना द्वारा अष्टांग योग-मार्ग का अवलंबन लेते हुए अपने मन को शुद्ध, पवित्र, एकाग्र और निरुद्ध कर सकते हैं। निरुद्ध मन ही पवित्र और ऋतम्भरा बुद्धि को प्रदान करने वाला है, जिस बुद्धि को प्राप्त करके हम पर-ब्रह्म परमात्मा का अनुभव कर सकते हैं और अपने जीवन के उद्देश्य को प्राप्त कर सकते हैं।

अतः ऐ मेरी देह ! तू बता कि कब मैं उस वरुण भगवान् के अन्दर अपने आपको अवस्थित देखूँगा। तेरे बने रहते ही कब वह सुन्दर घड़ी मुझे प्राप्त होगी कि मेरी सुन्दर भेंट को वह कमनीय भगवान् स्वीकार करेंगे ! तब मैं सुन्दर और निरुद्ध मन वाला होकर उस वरुण भगवान् के दर्शन कर सकूँगा। मैं तेरे स्वस्थ रहते ही स्वस्थ मन से उस वरुण भगवान के दर्शन करना चाहता हूँ, तू ऐसा बनकर शीघ्र ही मेरे लिए वह सौभाग्यशाली दिन ले आ।

(६) किसीके हित पर अत्यन्त बाधा पहुंचाना, (७) किसी के गुप्त रहस्य को खोलना, (८) दूसरे को सुख से वंचित करना, (९) अकारण कैद करना और प्राण-दण्ड देना। इनसे बचे रहना ही अहिंसा है।

सत्य

जो बात दूसरों के लिए अत्यन्त हितकर है वही 'सत्य' है। सत्य का यही लक्षण है—सत्य बोलो, प्रिय बोलो। अप्रिय सत्य कदापि नहीं बोलना चाहिए, इसी प्रकार प्रिय असत्य भी मुंह से न निकले यही सनातन-धर्म है।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य कहते हैं मैथुन के त्यागने को। मैथुन भी आठ प्रकार का होता है—(१) स्त्री का स्मरण, (२) उसकी चर्चा करना, (३) उसके साथ क्रीडा करना, (४) उसकी ओर देखना, (५) उससे छुप-छिपकर बातें करना, (६) उसको पाने का सङ्कल्प करना, (७) उसके लिए उद्योग करना और क्रिया-निवृत्ति, ब्रह्मचर्य ही सारी सिद्धियों का मूल है, इसके बिना सारी क्रिया निष्फल हो जाती है। वाशिष्ठ, चन्द्रमा, शुक्र-देवताओं के आचार्य बृहस्पति जी तथा पितामह ब्रह्माजी-ये तपोवृद्ध, वयोवृद्ध होते हुए भी स्त्रियों के मोह में फंस गये। गौडी, पैष्टी और माध्वी, ये तीन प्रकार की सुरा जाननी चाहिए। इसके बाद चौथी सुरा स्त्री है जिसने जगत् को मोहित कर रखा है। मदिरा को तो पीने के बाद मनुष्य मतवाला होता है किन्तु युवा-स्त्री को तो देखते ही वह मतवाला हो जाता है। वह देखने मात्र से ही मन में उन्माद ला भरती है। इसलिए उस पर दृष्टि नहीं डालनी चाहिए।

अस्तेय

मन-वाणी-शरीर द्वारा चोरी से सर्वथा बचे रहना ही अस्तेय कहा जाता है। यदि कोई बलपूर्वक किसी की वस्तु को हर लेता है तो उसे तिर्यक् योनि में जन्म अवश्य लेना पड़ता है। यह दशा उसकी भी होती है जो हवन किए बिना ही बलि-वैश्वदेव के द्वारा देवता आदि का भाग अर्पण किए (भोग लगाए) बिना ही भोजन करता है।

अपरिग्रह

कोपीन (अपने शरीर को ढकने वाला वस्त्र), शरीर को शीत से बचाने वाली कन्था (गुदड़ी) खड़ाऊँ और शरीर की रक्षा करने वाले मृत-वस्त्र का संग्रह मात्र अपरिग्रह कहलाता है क्योंकि धर्म के अनुष्ठान में लगे शरीर की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।

शौच

शौच दो प्रकार का होता है, एक बाह्य और दूसरा आन्तरिक। मिट्टी और जल से बाहर की शुद्धि होती है और भाव की शुद्धि को आभ्यान्तर-शुद्धि कहते हैं। दोनों ही प्रकार से जो शुद्ध है वही शुद्ध माना जाता है। प्रारब्ध के अनुसार जैसे-तैसे जो भी प्राप्त हो उसी में हर्ष मानना सन्तोष कहा जाता है। मन और इन्द्रिय की एकाग्रता को तप कहते हैं। मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना सब धर्मों में श्रेष्ठ माना जाता है।

तप

तप तीन प्रकार का होता है—वाचिक,

मानसिक और शारीरिक। मन्त्र जप आदि को वाचिक-तप कहा जाता है। आसक्ति का त्याग करना ही मानसिक तप है और देवताओं का पूजन आदि शारीरिक तप कहलाता है। उपरोक्त तीनों तप सब कुछ देने वाले हैं। जैसे वेद प्रणव से ही आरम्भ होते हैं। अतः प्रणव में ही सब वेदों की स्थिति है। वाणी का जितना विषय है, सब प्रणव है। गीता में स्वयं भगवान् कृष्ण ने कहा है—

'ॐ इत्येकाक्षरो ब्रह्म व्याहरन मामनुस्मरन्।'

स्वाध्याय

'ओ३म्' का एक अक्षर स्वयं ब्रह्म कहाता है। अतः एक प्रणव का ही अभ्यास करना चाहिए, यह स्वाध्याय के अन्तर्गत है। प्रणव अर्थात् ओंकार में अकार, उकार, अर्धमात्रा विशिष्ट मकार है तीन मात्राएँ तीनों वेद, भू आदि तीनों लोक, तीन गुण जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीन अवस्थाएँ, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवता प्रणवरूप हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्ददेवी, महेश्वर तथा प्रद्युम्न, श्री, वासुदेव—ये क्रम से ही सब ओंकार के स्वरूप हैं। ओंकारमात्र से रहित तथा अनंत मात्राओं से युक्त है। वह द्वैत की निवृत्ति करने वाला तथा शिवस्वरूप है। ऐसे ओंकार को जिसने जान लिया है वही मुनि है। प्रणव की चतुर्थ मात्रा जो अर्धमात्रा के नाम से प्रसिद्ध है वह गान्धारी कहलाती है। वही तुर्य नाम से प्रसिद्ध परब्रह्म है, वह ज्योतिर्मय है। जैसे घड़े के भीतर रखा हुआ दीपक वहीं प्रकाश करता है, वैसे ही हृदय में स्थित परब्रह्म भी अपनी ज्ञानमयी ज्योति छिटकाये रहता है। मनुष्य को चाहिए कि मन से हृदय-कमल में स्थित आत्मा या ब्रह्म का ध्यान करे और जिह्वा से सदा प्रणव का जप करता रहे, यही ईश्वर प्रणिधान है।

प्रणव धनुष है, जीवात्मा बाण है तथा ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा जाता है। सावधान होकर इसी लक्ष्य का भेदन करना चाहिए। यह एकाक्षर प्रणव ही ब्रह्म है, यही परमतत्व है। इस एकाक्षर ब्रह्म को जानकर जो जिस वस्तु की इच्छा करता है उसको उस वस्तु की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रणव का देवी गायत्री-छन्द है। अन्तर्यामी ऋषि है, परमात्मा, देवता हैं तथा भोग और मोक्ष की सिद्धि के लिए इसका विनियोग किया जाता है। इसके अभ्यास की विधि इस प्रकार है—

ओं भू अग्न्यात्मने हृदयाय नमः

ओं भुवः प्रत्याप्रत्यात्मने शिरसे स्वाहा

ओं स्व स्वात्मने शिखायै वषट्

ओं भूर्भुवः स्वः सत्यात्मने कवचाय हुँ

ओं भूर्भुवः स्वः सत्यात्मने अस्त्रायफट्

इस प्रकार अभ्यास करके भोग और मोक्ष की सिद्धि के लिए भगवान् विष्णु का पूजन, उनके नामों का जप तथा उनके उद्देश्य से तेल-घी आदि से हवन करें। इससे मनुष्य की समस्त कामनाएँ पूरी होती हैं—यही ईश्वर-पूजन है। इसका निष्काम भाव से अनुष्ठान करना ही उत्तम कहा गया है। जो मनुष्य प्रतिदिन बारह हजार प्रणव का जप करता है या गुरुमन्त्र का जप करता है उसको बारह

शिव-शक्ति का प्रतीक—

भारत का एक उपेक्षित तीर्थ

श्री एस एम० चौरसिया

चित्रांकित श्रीयन्त्राकार मन्दिर का संक्षिप्त परिचय देने से पूर्व जन-साधारण को यह बता देना परम आवश्यक है कि श्रीयन्त्र क्या है? उसका हमारे जीवन से क्या सम्बन्ध एवं महत्व है?

श्रीयन्त्र यह अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायिका षोडशी परामट्टारिका राजराजेश्वरी ललिता महात्रिपुर सुन्दरी का श्रीविग्रह है। इसकी विधिवत् पूजा, अर्चना इत्यादि प्रायः देवालयों में परम्परागत जगद्गुरु शंकराचार्यों के मठों तथा श्रीविद्या के उपासकों द्वारा अपने निजी पूजा-गृहों में की जाने की प्रथा चली आ रही है। श्रीयन्त्र में सभी यंत्रों और मन्त्रों का समावेश है। इसके बाहर कुछ भी नहीं है।

चार अधोमुखी शिवत्रिकोणों तथा पाँच ऊर्ध्वमुख शक्ति त्रिकोणों के आपस में मिलने से श्रीयन्त्र निर्माण होता है। यह शिव और शक्ति का समरस रूप है। इस मध्यवर्ती त्रिकोण तथा उसके मध्य में स्थित रक्तवर्ण बिन्दु शिवलिंग है। इसका केन्द्रबिन्दु ही सृष्टि की उत्पत्ति का मूल स्थान है तथा सृष्टि की रचना इसी केन्द्रबिन्दु से आरम्भ होती है। यह ब्रह्माण्ड और पिण्डाण्ड का प्रतीक है। इसकी आकृति को देखने से नौ आवरण स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं।

श्रीयन्त्र का केन्द्रबिन्दु ही अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायिका षोडशी परामट्टारिका राज-राजेश्वरी ललिता महात्रिपुरा सुन्दरी का परम रमणीय एवं सर्वानंदमय निवास-गृह है। इसी निवास-गृह में श्री माता ललिता भगवान शिव के वाम भाग पर विराजमान है। इसके आठ आवरणों पर विराजमान ३३ कोटि देवी-देवता श्रीमाता ललिता की सेवा में तत्पर है। ये सभी देवी-देवता भगवती की इच्छा और आदेशानुसार अपने-अपने अधिकार क्षेत्र के कार्यों में रत है।

महीने में परब्रह्म का ज्ञान हो जाता है। एक करोड़ जप करने पर अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। एक लाख प्रणव-जप करने से सरस्वती की कृपा हो जाती है।

विष्णु भगवान का भजन तीन प्रकार से किया जाता है—१. वैदिक, २. तान्त्रिक, ३. मिश्र—इन तीनों में से जो भी अभीष्ट हो उसी एक विधि का आश्रय लेकर श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए। जो मनुष्य दण्ड की भाँति पृथ्वी पर पड़कर भगवान् को साष्टांग प्रणाम करता है उसे जिस गति की प्राप्ति होती है वह सैकड़ों यज्ञों से भी दुर्लभ है। जिसकी आराधना वेद में पराभक्ति है। शिव, गणेश, विष्णु, कृष्ण या गुरु को लक्ष्य बनाकर ध्यानयोग द्वारा जिस आराध्यदेव का ध्यान करता है उसी के द्वारा उसको परब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है लेकिन जब तक गुरु की कृपा नहीं होती, तब तक उसको पूरे लक्ष्यकी प्राप्ति नहीं हो पाती, जैसा कि कहा है—

'गुरोर्भावि विद्या विषतुल्या'—अर्थात् गुरु के बिना विद्या जहरके समान है। जैसी श्रद्धा करके देवता की भक्ति की जाती है वैसी ही गुरु में पराभक्ति होनी चाहिए, उसी को यथार्थ ज्ञान हो पाता है। क्योंकि कहा है—

'पिता से माता सौगुना, करती सुत सौं प्यार,
माता से हरि सौगुना, हरि से गुरु सौबार।'

—※—

ऐसे अनन्त महिमाओं तथा ६४ तंत्रों की शक्ति से सम्पन्न श्रीयन्त्र को, आज से लगभग ३०० [तीन सौ] वर्ष पूर्व पवित्र पावनी नर्मदा नदी के तट से कुछ दूरी पर जबलपुर के गढ़ा नामक मुहल्ले में परम-पूज्य दादू ब्रह्मचारी ने एक आकर्षक एवं सम्पूर्ण कलाओं से युक्त मंदिर का रूप देकर एक मंदिर का निर्माण किया है। श्रीयन्त्र के प्रथम आवरण भूपुर तीन रेखाओं की प्रत्येक रेखा, कमल-दलों की प्रत्येक पङ्खुड़ियों तथा त्रिकोणों के प्रत्येक त्रिकोण पर विन्ध्य पर्वत के रंगीन पत्थरों से निर्मित देवियों की सुन्दर एवं आकर्षक मूर्तियाँ स्थापित की गई हैं। इस ५० फुट ऊँचे श्रीयन्त्राकार मन्दिर का निर्माण भी विन्ध्य पर्वत के रंगीन पत्थरों से किया है। श्री दादू ब्रह्मचारी ने प्रत्येक वर्ष के पुष्य नक्षत्र में इस मंदिर का निर्माण किया। इसका निर्माण-कार्य सत्रह वर्षों में पूर्ण हुआ। इसी कारण इसे पुष्य मन्दिर के नाम से भी प्रसिद्धि प्राप्त हुई। कुछ लोग इसे गुड़िया शिव-मंदिर के नाम से जानते हैं।

श्रीयन्त्राकार मन्दिर के निर्माणकर्ता पूज्य दादू ब्रह्मचारी ने श्रीयन्त्र के नौ आवरणों पर शास्त्र विधिअनुसार क्रम से मूर्तियाँ स्थापित की हैं। इसके प्रत्येक आवरण पर स्थापित देवियों की मूर्तियों के नाम, स्थान, क्रम और उनके कार्य इस प्रकार हैं।

प्रथम आवरण—भूपुर (त्रैलोक्य मोहन-चक्र)

इसका निर्माण तीन समानांतर रेखाओं से किया गया है। इसकी चार मुख्य दिशाओं में चार प्रवेश द्वार हैं। इसकी तीन रेखायें सत, रज और तम की प्रतीक हैं। प्रथम बाह्य रेखा पर दस सिद्धि देवियोंकी मूर्तियाँ-(१) अणिमा सिद्धि, (२) महिमा सिद्धि, (३) लघिमा सिद्धि, (४) ईशित्व सिद्धि, (५) वशित्व सिद्धि, (६) प्राकाम्य सिद्धि, (७) भुक्ति सिद्धि, (८) इच्छा सिद्धि, (९) प्राप्ति सिद्धि, सर्वकाम सिद्धि क्रम से स्थापित की गई हैं। ये सिद्धियाँ श्रीयन्त्र के द्वार पर पहुँचे भक्तों की मनोकामनाएँ पूर्ण करने में समर्थ हैं। सकाम भक्त इन सिद्धियों द्वारा प्रदान किये गये मनोवांछित फलों से संतुष्ट हो श्रीयन्त्र के भीतर प्रवेश करने की इच्छा नहीं करता। इसके विपरीत निष्काम भक्त इन सिद्धियों के प्रलोभनों में न पड़ते हुए अन्दर प्रवेश कर जाता है। ये सिद्धियाँ मानव-शरीर के शृंगारादि पर अपना पूर्ण नियंत्रण रखती हैं।

मध्य रेखा पर आठ मातृकाओं—(१) ब्राह्मी, (२) माहेश्वरी, (३) कौमारी, (४) वैष्णवी, (५) वाराही, (६) माहेन्द्री, (७) चामुण्डा, (८) महालक्ष्मी की मूर्तियाँ क्रम से स्थापित की गई हैं। ये मातृकायें जीव-प्राणी के कण्ठ-तल्वादि के द्वारा वैखरी वाणी के रूप में मुख से प्रकट होती हैं। इसी वाणी को शब्द रूप प्राप्त होता है, इन्हीं शब्दों से से संसार के सारे कार्य चल रहे हैं।

तृतीय आंतरिक रेखा पर दस मुद्रा-शक्ति देवियों-(१) सर्व संक्षोभिणी, (२) सर्व विद्रा-

विणी, (३) सर्वाकर्षिणी, (४) सर्व वशंकरी, (५) सर्वोन्मादिनी, (६) सर्व महांकुशा, (७) सर्व खेचरी, (८) सर्व बीज, (९) सर्व प्रकट-योनि, (१०) सर्व त्रिखण्डा की मूर्तियाँ क्रम से स्थापित की गई हैं। ये मुद्रा शक्तियाँ अपने प्रभाव से मानव द्वारा किये जाने वाले क्रोध, पाप, भूल, पुण्य इत्यादि पर पूर्ण नियन्त्रण रखती हैं।

द्वितीय आवरण—षोडशदल कमल (सर्वाशा परिपूरक चक्र)

इस कमल की सोलह पंखड़ियों पर चंद्रमा की १६ कलाओं के रूप में १६ नित्या देवियों (१) कामाकर्षिणी, (२) बुध्याकर्षिणी, (३) अहङ्काराकर्षिणी, (४) शब्दाकर्षिणी, (५) स्पर्शाकर्षिणी, (६) रूपाकर्षिणी, (७) रसा-कर्षिणी, (८) गंधाकर्षिणी, (९) चित्ताकर्षिणी (१०) अमृताकर्षिणी, (११) स्मृत्याकर्षिणी, (१२) नामाकर्षिणी, (१३) बीजाकर्षिणी, (१४) आत्माकर्षिणी, (१५) अमृताकर्षिणी, (१६) शरीराकर्षिणी की मूर्तियाँ क्रम से स्थापितकी गई है। ये १६ नित्यादेवियाँ उपा-सक की मनोकामनायें पूर्ण करने में समर्थ है।

तृतीय आवरण—अष्टदल कमल (सर्व संक्षोभण चक्र)

इस कमल की आठ पंखड़ियों पर आठ शक्तिदेवियों—(१) अनंग कुसुमा, (२) अनंग मेखला, (३) अनंग मदना, (४) अनंग मदना-तुरा, (५) अनंगरेखा (६) अनंग-वेगिनी, (७) अनंगकुशा, (८) अनंगमालिनी की मूर्तियाँ क्रम से स्थापित की गई है। ये आठ शक्ति-देवियाँ अपनी-अपनी गुप्ततर योगिनियों के साथ श्रीयन्त्र की मुख्या शक्तिका महात्रिपुर सुन्दरी के सभी आदेशों का पालन करती हुई सृष्टि के समस्त प्रभावी कार्यों को करती है। सृष्टि के हावभाव, वस्तुओं की उत्पत्ति, वस्तुओं का ग्रहण तथा उनमें हेरफेर इत्यादि कार्यों तथा मानव की बातचीत, सुनना, आनन्द, दुःख इत्यादि पर पूर्ण नियन्त्रण रखती है।

चतुर्थ आवरण—चतुर्दशार (सर्व सौभाग्यदायक चक्र)

इसके १४ त्रिकोणों पर १४ शक्ति-देवियों-(१) सर्व संक्षोभिणी, (२) सर्व विद्राविणी, (३) सर्वाकर्षिणी, (४) सर्वाह्लादिनी, (५) सर्व सम्मोहिनी, (६) सर्व स्तम्भिनी, (७) सर्व जृम्भिणी, (८) सर्व वशंकरी, (९) सर्व रंजिनी, (१०) सर्वोन्मादिनी, (११) सर्वार्थ-साधिनी, (१२) सर्व सम्पत्ति पूरिणी (१३) सर्व मन्त्रमयी, (१४) सर्व द्वन्द्व क्षयकारी की मूर्तियाँ क्रम से स्थापित की गई हैं। ये १४ शक्ति-देवियाँ मानव शरीर तथा ब्रह्माण्ड के आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन पञ्च महाभूतों को सदा गतिशील रखती हैं। पंचमहाभूतों पर इनका पूर्ण नियंत्रण रहता है।

पाँचवाँ आवरण—बहिर्दशार (सर्वार्थ साधक चक्र)

इसके दस त्रिकोणों पर दस शक्तिदेवियों-(१) सर्व सिद्धिप्रदा, (२) सर्व सम्पत्प्रदा, (३) सर्व प्रियंकारी, (४) सर्व मङ्गलकारिणी,

(५) सर्व कामप्रदा, (६) सर्व दुःखविमोचिनी (७) सर्व मृत्युप्रशमनी, (८) सर्व विघ्ननिवारिणी, (९) सर्वांग-सुन्दरी, (१०) सर्व सौभाग्यदायिनी की मूर्तियां क्रम से स्थापित की गई हैं। ये शक्ति देवियां अपनी-अपनी गुप्ततर योगिनियों की सहायता से सृष्टि (ब्रह्मांड) मानव शरीर (पिण्डाण्ड) के आन्तरिक एवं वाह्य सम्बन्ध को सदा जोड़े रहती हैं।

छठवां आवरण—अन्तर्दशार
(सर्व रक्षाकर चक्र)

इसके दस त्रिकोणों पर दस शक्ति देवियां—(१) सर्वज्ञा, (२) सर्व शक्तिप्रदा, (३) सर्व ज्ञानमयी, (४) सर्वैश्वर्यप्रदा, (५) सर्वव्याधिनाशिनी, (६) सर्वाधार स्वरूपा, (७) सर्व पापहरा, (८) सर्वानन्दमयी, (९) सर्व रक्षास्वरूपिणी, (१०) सर्वेप्सित फलप्रदा की मूर्तियां क्रम से स्थापित की गई हैं। ये शक्ति देवियां सृष्टि के सारे कार्यों को गतिशील रखती हैं। उसी प्रकार मानव शरीर में अन्न, रस, रक्त, मांस, मेदा इत्यादि की उत्पादिका एवं नियन्त्रिका हैं।

सातवां आवरण—अष्टार
(सर्व रोग हर चक्र)

इसके आठ त्रिकोणों पर आठ वाग्देवियां—(१) वशिनी (२) कामेश्वरी (३) मोदिनी (४) विमला (५) अरुणा (६) जयिनी (७) सर्वेश्वरी (८) कौलिनी की मूर्तियां क्रम से स्थापित की गई हैं। ये आठ वाग्देवियां अपनी-अपनी रहस्य योगिनियों के साथ मानव शरीर में शक्ति, शब्द, ज्ञान तथा नौ रसों को उत्पन्न करती हैं। इन्हीं की कृपा से सृष्टि के समस्त जीव प्राणियों को स्फूर्ति प्राप्त करती है।

आठवां आवरण—मध्यवर्ती त्रिकोण
(सर्व सिद्धिप्रद चक्र)

इसकी तीन भुजाओं के बाहरी भाग पर तीन महाशक्तियों—(१) कामेश्वरी (२) वज्रेश्वरी (३) भगमालिनी तथा आन्तरिक भाग पर—(१) महा कामेश्वरी (२) महा वज्रेश्वरी (३) महा भगमालिनी की मूर्तियां स्थापित की गई हैं। निष्काम भक्त अथवा योगी ही इन महाशक्तियों तक पहुंचने में समर्थ होता है।

नवां आवरण—केन्द्र-बिन्दु
(सर्वानन्दमय चक्र)

इस केन्द्रबिन्दु पर भगवान् कामेश्वर और भगवती कामेश्वरी समरस हो क्रीड़ा-विहार में निमग्न हैं। उनका यह क्रीड़ा-स्थल सृष्टि के पूर्व था और सृष्टि के प्रलयोपरांत भी ज्यों का त्यों रहता है। इसमें किसी प्रकार की कमी नहीं रहती, इसी कारण इसे सर्वानन्दमय चक्र कहते हैं। इसमें सभी ओर अनिर्वचनीय आनन्द सदा सर्वदा छाया रहता है। निष्काम योगी इसी स्थान में ब्रह्मरूप को प्राप्त हो जाता है। उसकी जन्म-मरण परम्परा समाप्त हो जाती है। भगवान् कामेश्वर और भगवती कामेश्वरी के समरस रूप को प्रदर्शित करने के लिए निर्माणकर्ता ने मंदिर के मध्य में शिवलिंग की मूर्ति स्थापित की है।

क्रमांक 'अ से ऐ' तक की मूर्तियां वामावर्तन क्रम से स्थापित की गई हैं। मन्दिर के गर्भगृह से देखने पर श्रीयंत्र की आकृति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उसी प्रकार श्रीयन्त्र

के आठ आवरणों पर स्थापित की गई देवी की मूर्तियाँ एक-दूसरे से भिन्न रूप में हैं। उन देवियों के ध्यान-मंत्रके अनुसार सारी मूर्तियाँ स्थापित की गई हैं। सभी देवियों के मुख बाहर की ओर हैं तथा वे अपने-अपने वाहन एवं अस्त्र-शस्त्र के साथ बैठी हुई हैं। मन्दिर के शिखर को देखने से वह मेरु के समान दिखाई देता है।

इस मंदिर के सामने के भाग से जुड़ा हुआ एक बैठकखाना बना है। इस बैठकखाने की छत में संगमरमर पर चित्रित श्रीयंत्र लगा है। इसी बैठकखाने में श्रीयंत्र के नीचे बैठकर दयालु भक्त शिवलिंग की पूजा-अर्चा करते हैं। मन्दिर के अहाते में एक कोने पर परम-पूज्य दादू ब्रह्मचारी की समाधि है। मंदिर के पिछले भाग के अहाते पर मंदिर के पुजारी रमेशकुमार पाण्डेय, शिक्षक माडल हायर-स्कूल जबलपुर का निवासी है। इसमें वे अपने परिवार के साथ रहते हैं। श्री रमेशकुमार पाण्डे ने मुझे बताया कि श्रीदादू ब्रह्मचारी की समाधि से प्रतिदिन संध्या समय एक नाग निकलता है और इधर-उधर घूम-फिर कर अपने गन्तव्य स्थान पर चला जाता है। इसी कारण सूर्यास्त के उपरान्त किसी को प्रवेश नहीं करने दिया जाता।

बड़े दुर्भाग्य की बात है कि संसार के इस अद्वितीय एवं अनन्त महिमाओं से युक्त श्री-यन्त्राकार मंदिर के अहाते में बड़ी-बड़ी घास उगी हुई है तथा कूड़ा-कर्कट का साम्राज्य है, मन्दिर के बाहर टूटे-फूटे मकानों के खण्डहरों तथा कूड़े-कर्कट का साम्राज्य है। इस मंदिर तक पहुंचने के लिए पक्का रास्ता नहीं है, ऐसे कल्पवृक्षरूपी मन्दिर की दुर्दशा हो रही है। यदि इस पर तुरन्त ध्यान नहीं दिया गया तो कुछ वर्षों में यह भी खण्डहर बन जावेगा। दादू ब्रह्मचारी की कला-कौशल को सुरक्षित रखना हम देशवासियों का पुनीत कर्तव्य है।

—⁂—

दो कुण्डलियाँ

तोता रटता राम को, हो पिंजड़े में बन्द।
मन उसके में यह बसा, 'कब छूटे यह फन्द' ॥
कब छूटे यह फन्द, रटनि तो है ना साँची।
मन में बसे न राम, भक्ति शुक की हम जाँची ॥
कह 'कुसुम हरिश्चन्द', हिये में है शुक रोता।
सुने न प्रभु यह टेर, रात दिन रटता तोता ॥ १

परमेश्वर की भक्ति को, हर नर नारि स्वतन्त्र।
जपो नाम तुम ईश का, गुरु दिया जो मन्त्र ॥
गुरु दिया जो मन्त्र, सदा कल्याण करेगा।
पायेगा हर चीज, मन्त्र जो ध्यान धरेगा ॥
कह 'कुसुम हरिश्चन्द', मिलाता यह ईश्वर।
जपता है जो रोज, वही पाता परमेश्वर ॥ २

—श्री हरिश्चन्द्र शाक्य 'कुसुम'

पत्रं-पुष्पं-फलं-तोयम्

प्राण घातक बारह दोष:—

शोक: क्रोधश्च लोभश्च कामोमान: परासुता ।
ईर्ष्या मोहो विधित्सा च कृपासूया जुगुप्सुता ॥
द्वादशैते महादोषा मनुष्य: प्राण नाशना: ।
ऐराविष्टो नर: पापम् मूढ़ संज्ञों व्यवस्यते ॥

—महाभा० उद्यो० अ० ४५

अर्थात्—१. शोक, २. क्रोध, ३. लोभ, ४. काम, ५. मान, ६. परासुता (द्रोह), ७. ईर्ष्या, ८. मोह, ९. विधित्सा (अपने को सर्वोच्च और सर्वाग्रणी बनाने की इच्छा), १०. कृपा, ११. असूया (द्रोह), और १२. जुगुप्सा (निन्दा)।

ये १२ दोष मानव के प्राणघातक बताये गये है इनसे घिरा हुआ मनुष्य बुद्धि के बिगड़ने पर पाप करता है रोग पापों का फल है, अतः सुख चाहने वाले को इन सभी दोषों से दूर रहना चाहिए।

× × × ×

प्राण रक्षक बारह गुण:—

धर्मश्च सत्यश्च तपोदमश्च अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षानुसूया ।
दानं श्रुतं चैव धृति: क्षमा च महाव्रता द्वादश ब्राह्मणस्य ॥

अर्थात्—१२ पुण्यमय प्राण रक्षक सत्कर्म है। १. धर्म, २. सत्य, ३. तप, ४. दम, (इन्द्रिय निग्रह) ५. मत्सरता न करना, ६. लज्जा, ७. सहिष्णुता, ८. अनुसूया (डाह निन्दा न करना), ९. दानशीलता, १०. विद्वानों का सत्सङ्ग, ११. धैर्य, और १२ क्षमा।

जो मनुष्य इन बारह गुण-दोषों पर दृष्टि रखते हुए चलते है वे सारी पृथ्वी पर अनुशासन कर सकते हैं। १२ प्राणरक्षक नियमों का पालन करने से एवं १२ प्राण नाशक दोषों को त्यागने से मनुष्य को आरोग्य और उन्नति का लाभ होता है।

× × × ×

इन्द्रियनिग्रह सर्वोत्तम औषध:—

जानन् मर्त्यो लोभमोहादिसक्तो मर्त्यं मर्त्यं मोहयित्वा मृषोक्त्या ।
स्वार्थं सेद्धुं यत्नतोऽर्थं विचिन्वन् मन्दार्थी न सौख्यमेयात्कथंनु ॥

अर्थात्—लोभ-मोह आदि से अभिभूत मनुष्य जान बूझकर झूठ एवं मन से अनेक

मनुष्यों को मोहित करके अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए धन को इकट्ठा करता हुआ सुख चाहता है परन्तु उसे सुख कैसे मिले ? अर्थात् वह सुखी नहीं हो सकता। यथा—

× × × ×

लोके द्रव्यं राज्यमानान्निरस्तं मर्त्यो दत्वा नाभ्युपैत्यन्यमीहाम्।
आत्म द्रोही द्रव्यमाचित्यपापात् तस्मात् स्वास्थ्यं वष्टिचिन्त्यं नकिस्यात्॥

अर्थात्—जैसे राज्यमान से निरस्त (खोटा) द्रव्य का व्यय करने से मनुष्य को अभि-वाञ्छित पदार्थ नहीं मिलता इसी प्रकार अपने आपको धोखा देने वाला मनुष्य अनर्थ से पैदा किये द्रव्य को व्यय करके उसम स्वास्थ्य चाहता है यह हमारे विचार में उसका ऐसा सोचना चिन्तनीय ही है।

× × × ×

सर्वामयानां त्रिविधा हि शान्ति र्ज्ञानार्थ कालाः समयोगयुक्ताः।
जितेन्द्रियं नानुतपन्ति रोगास्तत्कालयुक्तं यदिनास्ति दैवम्॥

अर्थात्—सब प्रकार के दुखों की शान्ति के तीन प्रकार हैं:—बुद्धिपूर्वक, उचित-काल में, मर्यादित इन्द्रियों से कर्म करें। यदि उस समय दैवी प्रकोप न हो तो जितेन्द्रिय पुरुष को रोग नहीं सताते।

× × × ×

दैवं पुरा यत् कृतमुच्यते तत्, तत् पौरुषं यत्त्विह कर्म दृष्टम्।
प्रवृत्ति हेतुर्विषमः स दृष्टो निवृत्ति हेतुस्तु समः स एव॥

अर्थात्—जन्मान्तर में किए हुए कर्म को दैव कहते हैं इस जन्म में किए हुए कर्म का नाम पुरुषार्थ है। असमय में किया गया विषम-पुरुषार्थ रोगोत्पादन का कारण बनता है। वही पुरुषार्थ बुद्धिपूर्वक यथा समय और उचित मर्यादा में किया गया आरोग्य का कारण बनता है।

× × × ×

नरो हिताहारविहारसेवी, समीक्ष्यकारी व्यसनेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥

अर्थात्—सोच-समझकर हित आचार और विचार करने वाला, संयमी, दानी, सर्वत्र समान भाव रखने वाला, सर्वथा सत्य का पालन करने वाला, क्षमाशील, प्रामा-णिक एवं विद्वान् पुरुषों की संगति करने वाला पुरुष आरोग-स्वस्थ रहता है।

× × × ×

'माप्र गाम पथो वयम्' —अथर्व० १३/१/५९

हे ईश्वर ! ऐसी सुमति प्रदान करो कि हम पथ भ्रष्ट न हों।

यह धोखे की सी टट्टी है

❀ नजीर अकबराबादी

यह पैंठ अजब है दुनिया की, यां क्या-क्या जिन्स इकट्ठी है।
यां माल किसी का मीठा है, और बोझ किसी की खट्टी है।
कुछ पकता है कुछ भुनता है, पकवान मिठाई पट्टी है।
जब देखा खूब तो आखिर को, ना चूल्हा-भाड़ न भट्टी है।
गुल-शोर-बबूला-आग-हवा और कीचड़-पानी-मिट्टी है।
हम देख चुके इस दुनिया को, यह धोखे की सी टट्टी है ।। १

कोई ताज खरीदे हंस-हंसकर, कोई तख्त खड़ा बनवाता है।
कोई रंगी कपड़े पहने है, कोई गुदड़ी ओढ़े जाता है।
कोई भाई-बाप-चचा-नाना, कोई नाती-पोता कहता है।
जब देखा खूब तो आखिर को, ना रिश्ता है ना नाता है।
गुल शोर बबूला आग हवा, और कीचड़ पानी मिट्टी है।
हम देख चुके इस दुनिया को, यह धोखे की सी टट्टी है ।। २

यहां बोझ किसी का हल्का है, और बैप किसी की भारी है।
क्या जाने कौन खरीदेगा, जो जिसने जिन्स उतारी है।
कोई सेठ महाजन लाखपती, बज्जाज कोई पन्सारी है।
जब देखा खूब तो आखिर को, दल्लाल न कोई ब्यापारी है।
हम देख चुके इस दुनिया को, यह धोखे की सी टट्टी है।
गुल शोर बबूला आग हवा, और कीचड़ पानी मिट्टी है ।। ३

कोई बाग बगीचे बनवाता, और घेर किसी ने घेरा है।
नित जिससे झगड़े रहते हैं, यह तेरा है यह मेरा है।
जब देखा खूब तो आखिर को, ना तेरा है ना मेरा है ।। ४

यह सैर तमाशा देख 'नजीर' अब जा कहिए वैसा कहिए।
कुछ बात नहीं बन आती है, चुपचाप पहेली क्या कहिए।
इक दम की पैंठ लगी है यह, कुछ दम की बोला-ठोली है।
गुल शोर बबूला आग हवा, यह कीचड़ पानी मिट्टी है।
हम देख चुके इस दुनिया को, सब धोखे की सी टट्टी है ।। ५

हठमार्गी योगियों को कुछ परामर्श

—※※—

सुषुम्णावाहिनि प्राणे सिद्ध्यत्येव मनोन्मनी ।
अन्यथा त्वितराभ्यासाः प्रयासायैव योगिनाम् ॥

प्राणवायु के सुषुम्ना वाही होने पर मनोन्मनी अवस्था सिद्ध हो जाती है अन्यथा योगियों के अन्य सब अभ्यास केवल परिश्रम मात्र ही रह जाते हैं।

पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्यते ।
मनश्च बध्यते येन पवनस्तेन बध्यते ॥

जिस योगी ने पवन को बाँध लिया है, उसीने मन को बाँध लिया है और जिसने मन को बाँध लिया है, उसी ने पवन को बाँध लिया है। अर्थात् पवन और मन इन दोनों में से एक के बन्धन में आने पर दूसरा भी बँध जाता है।

हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरणः ।
तयोर्विनष्ट एकस्मिंस्तौ द्वावपि विनश्यतः ॥

चित्त की प्रवृत्ति में दो कारण हैं—एक वासना और दूसरी प्राणवायु। इन दोनों में से एक के नष्ट हो जाने पर दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। भावना नामक संस्कार को वासना कहते हैं। यहाँ यह अभिप्राय है कि वासना के नष्ट होने पर वायु और चित्त दोनों नष्ट हो जाते हैं और वायु के क्षीण हो जाने पर चित्त और वासना क्षीण हो जाता है और चित्त के क्षीण होने पर समीरण और वासना क्षीण हो जाती है।

यह बात वशिष्ठ ग्रन्थ में कही है कि हे राम! चित्त के दो बीज हैं—एक प्राण, स्पन्दन और दूसरी वासना। इनमें से एक के नष्ट होने पर दोनों ही नष्ट हो जाते हैं और जब तक मन नहीं विलीन हुआ है तब तक वासना का क्षय नहीं होता है और जब तक वासना क्षीण नहीं होती तब तक चित्त शान्त नहीं होता है और जब तक तत्व ज्ञान नहीं होता तब तक चित्त का विनाश नहीं होता है तब तक तत्व की प्राप्ति कहाँ से हो सकती है? जब तक तत्व की प्राप्ति नहीं होती तब तक वासनाओं का नाश नहीं हो सकता। इसलिए तत्व-ज्ञान, मन का नाश, वासना का नाश, ये तीनों परस्पर एक-दूसरे के कारण बनकर दुःसाध्य होकर स्थित हैं। जब तक इन तीनों का एक साथ और बार-बार अभ्यास नहीं किया जाता तब तक तत्व सम्प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है।

मनो यत्र विलीयेत पवनस्तत्र लीयते ।
पवनो लीयते यत्र मनस्तत्र विलीयते ॥

जिस जगह मन विलीन हो जाय वहाँ वायु लीन हो जाती है और जहाँ वायु लीन हो जाती है वहाँ मन लीन हो जाता है।

दुग्धाम्बुवत्संमिलितावुभौ तौ तुल्यक्रियौ मानस-मारुतौ हि ।
यतो मरुत्तत्र मनः प्रवृत्तिर्यतो मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्तिः ॥

एक क्रिया वाले ये दोनों मन और वायु दूध और पानी की तरह मिले हुए हैं, इसी से जहाँ वायु है वहाँ मन की प्रवृत्ति होती है और जहाँ मन है वहाँ वायु की प्रवृत्ति होती है। इसी बात को अमिष्ट ग्रन्थ में इस प्रकार कहा है कि जन्तुओं के प्राण और चित्त दोनों अविना-भावि हैं, पुष्प और सुगन्धि के समान मिले हैं अथवा तिल-तैल के समान हैं, यह दोनों विनाश द्वारा मोक्ष नामक उत्तम कार्य करते हैं। जो पदार्थ जिस पदार्थ के बिना छूट न सकता हो उस पदार्थ का नाम अविना-भाव कहलाता है।

तत्रैकनाशादपरस्य नाश एकप्रवृत्तेरपर प्रवृत्तिः ।
अध्वस्तयोश्चेन्द्रियवर्गवृत्तिः प्रध्वस्तयोर्मोक्षपदस्य सिद्धि ॥

उन दोनों में एक के नाश से दूसरे का नाश होता है और एक की प्रवृत्ति में दूसरे की प्रवृत्ति भी होती है। इन दोनों के लीन न होने पर समस्त इन्द्रियों की प्रवृत्ति होती है और न नष्ट हो जाने पर मोक्षपद की सिद्धि हो जाती है। इन दोनों के लय हो जाने पर पुरुष अपने स्वरूप में पहुँच जाता है, इसी से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इसी से योग-बीज में कहा है कि षट्कर्मयोग आदि के सेवन करने से पवन का नाश साध्य होता है और गुरु की कृपा से निमेष मात्र में ही मन का विनाश सुसाध्य हो जाता है।

रसस्य मनसश्चैव चञ्चलत्वं स्वभावतः ।
रसो बद्धो मनो बद्धं किं न सिद्ध्यति भूतले ॥

रस और मन में स्वभाव से ही चंचलता होती है, इनके बंधने पर मन बंध जाता है, फिर संसार में कौनसी वस्तु साध्य नहीं हो सकती है, रस पारे को कहते हैं।

मूर्च्छितो हरते व्याधीन् मृतो जीवयति स्वयम् ।
बद्धः खेचरतां धत्ते रसो वायुश्च पार्वति ॥

रस और वायु मूर्च्छित होकर समस्त रोगों को हर लेते हैं और स्वयं मरने पर दूसरों को जिला देते हैं। हे पार्वती! बंधने पर आकाश में गमन करने वाले होते हैं। अन्य औषधियों के योग से पारे की चञ्चलता रुक जाती है, अतएव वह मूर्च्छित कहलाता है। कुम्भक के अन्त में रेचक से निवृत्त वायु को मूर्च्छित कहते हैं। भस्म हो जाने पर पारे को मृत कहते हैं और ब्रह्मरन्ध्र में लीन वायु मृत होता है। क्रियाविशेष द्वारा गुटिका बना पारा बद्ध कहलाता है और भृकुटी के मध्य में धारणा विशेष धारण किया गया प्राण बद्ध होता है। यही गोरक्षशतक में कहा है कि छोड़े हुए जल के समान गोलाकार वायुरूप और यकार अर्थात् अन्तःकरण तत्त्व अर्थात् प्राण जो भृकुटियों के मध्य में है, उस तत्त्व का ईश्वर देवता है। इस ईश्वर में चित्त सहित प्राण को लीन करके पाँच घड़ी पर्यन्त धारणा करे। यह वायु के साथ चित्त की धारणा योगीजनों को आकाश में भी पहुँचा सकती है।

—हठयोग प्रदीपिका से साभार

सिद्ध योग

प्रवेशाङ्क – विशेषाङ्क

[वर्ष २१ अङ्क १]

अप्रैल १९८८

वार्षिक मूल्य ३०) रु० मात्र

आकर्षण की एक झलक

* श्री गुरुदेव जी महाराज का विशेष लेख एवं महाप्रभुजी का लीला-चरित्र
* मनीषियों की दृष्टि में योग-दर्शन —(श्री दर्शनानन्द)
* शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु —(आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा)
* योग-भूमिका में सामाजिक चेतना —(डा० श्री रमेशचन्द्र मिश्र)
* गुडाकेश —(श्री शिवानन्द)
* स्वाध्याय से सिद्धेश्वर कृपा —(श्री केशव उपाध्याय)
* श्री गुरुदेव और उनका शक्ति-संचार —(डा० श्री विष्णुदत्त शर्मा)
* प्रेत-बाधा निवारण —(श्री पन्नालाल)
* मानवतावादी कबीर —(श्री क्षेमेन्द्र स्नातक)
* ब्रह्मलोक प्राप्ति के साधन —(काका कालेलकर)
* पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्—रहस्यमय प्रश्न और उनके अलौकिक उत्तर
* अन्य सुविख्यात विद्वानों के लेख एवं सुकवियों की कविताओं से समन्वित यथा श्री पूर्णचन्द्र पंत शास्त्री, डा० विजयसिंह, श्री विष्णुप्रसाद व्यास आदि।

प्रेषक कार्यालय :—

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग साधना केन्द्र, बमई (इत्मादपुर) आगरा।

PRINTED MATTER
Book-Post

श्री ....

....

....

....

भक्तिमयी गीतिका

तन्न दूरं नीयताम् ॥
हे विभो आनन्द सिन्धो मेधा दीयताम्। यच्च दुरितं दीनबन्धो ! सेवकमनुगृह्यताम् ॥
चञ्चलानि हीन्द्रियाणि मानसं मे पूयताम्। शरणपाते लात्वकीर्त्तं ।
त्वयि च वीर्यं विद्यते यत् तच्चमयि विधीयताम्। या च दुर्गुं णदीनता मयि सातु शीघ्रं क्षीयताम् ॥
शौर्यं-धैर्यं-तेजसं च भारते वेकीयताम्। हे दयामय ! अयि अनादे ! प्रार्थना मम श्रूयताम् ॥

अर्थात्—हे सर्व व्यापक आनन्द सिन्धो मुझे उत्तम बुद्धि दीजिये। मेरे जो बुरे गुण कर्म-स्वभाव है वह दूर कीजिये। मेरी चञ्चल इन्द्रियों और मन को पवित्र कीजिये। हे शरणागत को शरण देने वाले प्रभो ! मैं आपके आश्रय की याचना करता हूँ। अपनी शरण में लेकर मुझ सेवक को अनुगृहीत कीजिये। हे सर्व शक्तिमान् ! आपमें जो शक्ति है वह मुझमें धारण कराइये और दुर्गुण, दीनता, निर्बलता मुझमें है उसे शीघ्र दूर कीजिये। हे कृपानिधान ! हमारे भारत के सभी अबाल-बाल-वृद्ध-स्त्री-पुरुषों को शूरवीर बनाइये। हे अनादि दयामय ! हमारी यह प्रार्थना सुनिये और इसे शीघ्र पूर्ण कीजिये।

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बमई कलाँ ताजगंज, आगरा-१ फोन ३७